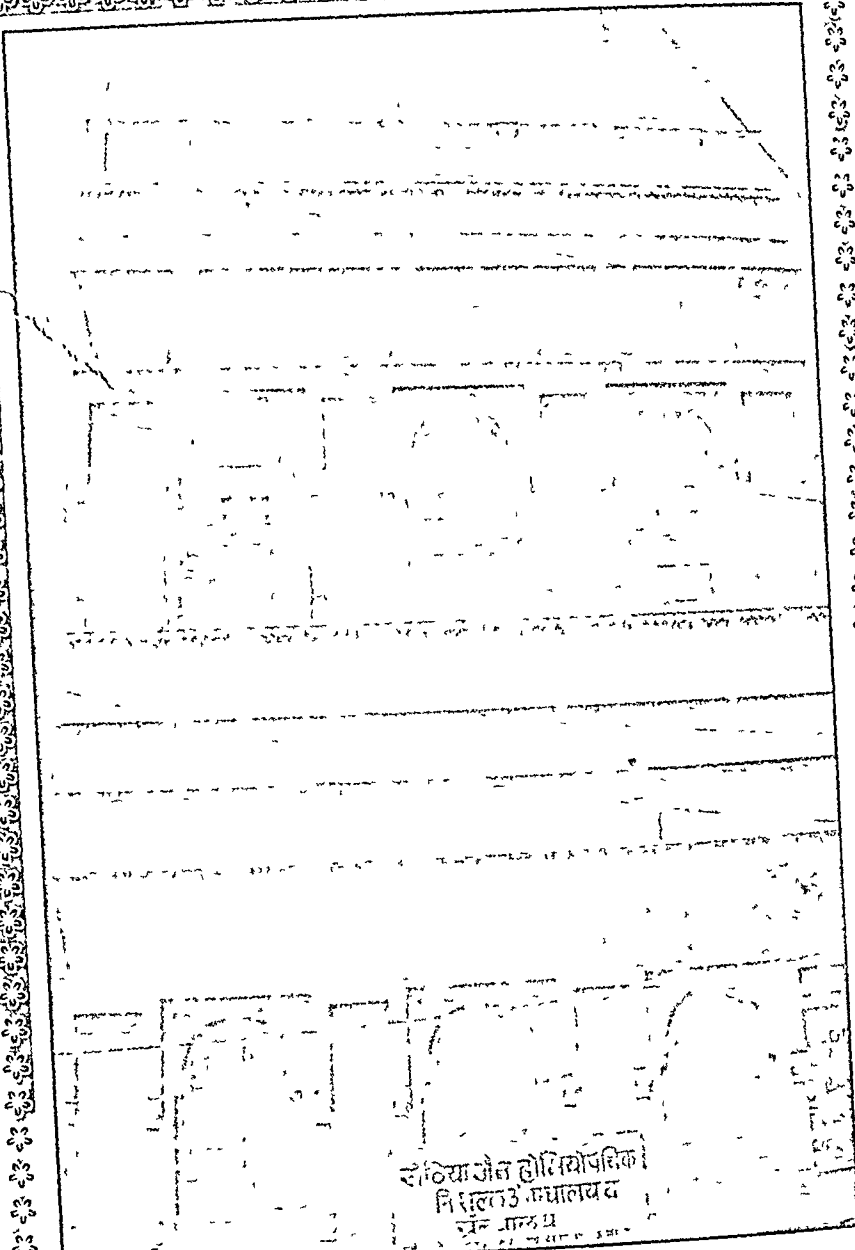


अगरचन्द भैंरोंदान सेठिया जैन ग्रन्थालय भवन

(स्थापित : 1913 ई.)

श्री वीतरागाय नमः

सेठिया जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं. 158

पच्चीस बोल का थोकड़ा

(सविस्तार एव सटिप्पण)

प्रकाशक :

अगरचन्द भैंरोंदान सेठिया

जैन पारमार्थिक संस्था

मरोठी सेठिया, मोहल्ला, बीकानेर-334005

दूरभाष : 0151-2543516

संस्था का जन्म शताब्दी वर्ष

28 वीं आवृत्ति
3100 प्रतियाँ

वि.सं. : 2067
वीर सं. : 2536
मार्च : 2010

मूल्य : 12.00

प्रकाशक **अगरचन्द भैरोंदान सेठिया**
जैन पारमार्थिक सस्था,
मरोटी सेठिया मौहल्ला
बीकानेर–334005 (राज)

प्रतियॉ 3100

मुल्य 12 00

सस्करण 28 वीं आवृत्ति जून, 2010

मुद्रक तिलोक प्रिटिग प्रेस, बीकानेर
मो 9314962475

मुद्रक– श्रीकृष्ण भारद्वाज
ोहर प्रिन्टिग प्रेस, पाली बाजार, ब्यावर
☎ 21441

प्रकाशकीय

'पच्चीस बोल का थोकडा' की २८ वी आवृत्ति (सविस्तार एव सटिप्पण) प्रस्तुत करते हुए हार्दिक प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है कि सस्था द्वारा प्रकाशित थोकडा सज्ञक कृतियो के प्रति श्रावक–श्राविकाओ, स्वाध्यायियो, साधको, शोधार्थियो एव युवा–वर्ग का रूझान दिन–ब–दिन अभिवर्द्धित हो रहा है। वस्तुत थोकडे शास्त्रो/आगमो मे गुम्फित गहन ज्ञान को सुगमता से आत्मसात् व कठस्थ करने की पुरा लोक शैली है, जिन्हे शास्त्रो की कुजिया कहा जाता है। इनके माध्यम से जैन श्रुत–निधि ा अद्यावधि तक अबाधित रूप मे प्रवहमान है। हम गौरवान्वित है कि इस विधा को सरक्षित/प्रकाशित कर जैन जगत् के सम्मुख लाने मे सस्था की अग्रणी भूमिका रही है।

उल्लेखनीय है कि समाज गौरव, धर्म धुरीण, लोकोपकारी एव बहुआयामी विचक्षण प्रतिभा के धनी श्रावक रत्न श्रीमान् भैरोदान जी सेठिया तथा सारल्य, सेवा एव औदार्य की प्रतिमूर्ति उनके अग्रज श्रीमान् अगरचन्दजी सेठिया एव उनके आत्मज श्रीमान् जेठमलजी सेठिया द्वारा सन् १६१३ मे सस्थापित सेठिया जैन पारमार्थिक सस्था अनवरत रूप से सेवा, शिक्षा–प्रसार, ज्ञान–प्रचार, नैतिक/धार्मिक प्रकाशन एव सस्कार निर्माण क्षेत्रो मे मूक एव अप्रतिम योगदान करती आ रही है। सस्थापको की दूर दृष्टि एव कुशल सोच का ही परिणाम है कि उन्होने सस्था को आत्मनिर्भर बनाने हेतु कोलकात्ता मे अचल सम्पत्ति समर्पित की थी, जिससे अर्जित आय द्वारा इसका सुसचालन सुनिश्चित होता रहे। अब तक किंडरगार्टन स्कूल से नाइठ कॉलेज तक शिक्षण, छात्रावास, महिला-शिक्षा प्रभृत्ति अनेक प्रवृत्तियो द्वारा सस्था ने कीर्तिमानीय सेवाए की है, जिनसे इन नर पुगव व इतिहास पुरुष सेठिया–बधुओ ने बीकानेर के इतिहास मे स्वर्णिम पृष्ठ जोडे है। सम्प्रति इसके अन्तर्गत ग्रन्थालय, नि शुल्क होमियोपैथिक औषधालय, सिद्धान्तशाला, स्वधर्मी सहयोग, सेठिया कोटडी का रख रखाव आदि प्रवृत्तिया सचालित है, जिन पर प्रतिवर्ष लक्षाधिक रुपये व्यय होते है।

सस्था के प्रकाशन अनुभाग से अब तक लगभग २०० पुस्तके/ग्रन्थ प्रकाशित हुए है, जिनकी लाखो प्रतियो से कई पीढिया लाभान्वित हुई है। इनमे आगम सूत्र (आचाराग/नन्दी/उत्तराध्ययन/दशवैकालिक/प्रश्न व्याकरण)

जैन सिद्धान्त विश्वकोश (जैन सिद्धान्त बोल सग्रह—आठ भाग), थोकडे (भगवती/पन्नवणा/ज्ञान थोकडा सग्रह क्रमश. ६, ३, ५ भाग) नवतत्त्व, शिक्षासार सग्रह, पच्चीस बोल, बारह व्रत आदि विशेष महत्वपूर्ण है एव सम्पूर्ण जैन समाज/साहित्य जगत् मे समादृत है।

प्रस्तुत कृति मे जैन धर्म/दर्शन के कतिपय विशिष्ट व मूल विषयो की परिभाषा व सरल, सुबोध, सोदाहरण व्याख्या की गई है, जैसे—गति, जाति, काया, इन्द्रिय, पर्याप्ति, प्राण, शरीर, योग, उपयोग, कर्म, गुणस्थान, इन्द्रियो के विषय, मिथ्यात्व, नवतत्त्व, आत्मा, दण्डक, लेश्या, ध्यान, षट् द्रव्य, बारह वत, पाच महाव्रत आदि। इनका अभिप्राय समझे बिना जैन आगम—दर्शन ग्रन्थो मे वर्णित ज्ञान की तह मे जाना कठिन है। अग सूत्रो (स्थानाग, समवायाग, भगवती, उपासक दशाग, प्रश्न व्याकरण), उपाग सूत्र (प्रज्ञापना), मूलसूत्रो (उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, अनुयोग द्वार) एव आवश्यक सूत्र से सकलित, जैन विद्या के अधारभूत विषय है और इनका स्पष्ट स्वरूप ज्ञात कर ही हम जैन सिद्धान्तो का तलस्पर्शी महत्व समझ सकते है।

ज्ञातव्य है कि पाठको व स्वाध्यायियो की माग के अनुरूप इस आवृत्ति मे बोलो को विस्तृत रूप से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। एतदर्थ श्री उदय नागोरी का सहयोग रहा। सस्था उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करती है।

पूरा विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक से जैन पारिभाषिक शब्दो को हृदयगम कर आबालवृद्ध श्रद्धालुजन, दर्शन विषय के पाठक व शोध छात्र एव साधक, आत्मधर्म से साक्षात् करने मे समर्थ हो सकेगे।

निवेदक

माणकचन्द सेठिया
अध्यक्ष

सुरेन्द्रकुमार सेठिया
उपाध्यक्ष

शान्तिलाल सेठिया
मत्री

रविन्द्र कुमार सेठिया
कोषाध्यक्ष

केशरीचन्द सेठिया
ट्रस्टी

महेन्द्र कुमार सेठिया
ट्रस्टी

(अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था)

ॐ

श्री वीतरागाय नम

पच्चीस बोल का थोकड़ा

❖ मंगलाचरण ❖

।। श्लोक ।।

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धिस्थिताः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पंचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु नो मंगलम् ।। १।।

भावार्थ—अरिहन्त एव सिद्धि स्थित सिद्ध भगवान् इन्द्र के समान महिमायुक्त हैं, जिनशासन की उन्नति करने वाले आचार्य वन्दनीय है और उपाध्याय पूजनीय है, जो जैन सिद्धान्तो के पाठक हैं। मुनिवर रत्नत्रय (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) की आराधना करते है। ऐसे पच परमेष्ठि प्रतिदिन मगल करे।

।। गाथा ।।

गइ जाइ कायेंदिय पज्जय पाणा,
तणु जोग उवओग कम्मं च।
ठाणं इंदिय विसय मिच्छा तत्तायाचेव,
दंडय खलु लेस्सा ज्झाणं च दिट्ठि।।१।।

छय दव्व रासि गिहत्थ वयाणि,
वण्णिवयं चेव भंगं चरित्तं।
एयाणि पण्णवीस पयाणि कहिओ,
सव्वण्णुना भगवया नायपुत्तेण।।२।।
चउ पंच छय पंच छय दसण्हं,
पंच पन्नर बारस्स अट्ठं च।
चउदस तेवीस दस नव अट्ठ,
चउवीसं छय चउ तिण्हि छय दो वि चेव।।३।।
बारस वया समणोवासयाणं,
महव्वया पंचेव तहा मुणिंदस्स।
एगोण पन्नास भंग पंच चरियं,
णेयव्वा अस्सिं अणुकम्म भेया।।४।।

उपर्युक्त गाथा मे पच्चीस बोल का सक्षिप्त वर्णन किया गया है, जो निम्नानुसार है –

१ गइ– गति चार २ जाइ–जाति पाच
३ काय–काया छह ४ इदिय– इन्द्रिय पाच
५ पज्जय–पर्याय छह ६ पाणा–प्राण दस
७ तणु–शरीर पांच ८ जोग–योग पन्द्रह
६ उवओग–उपयोग बारह १० कम्म– कर्म आठ
११ ठाण–गुणस्थान चौदह १२ इदिय विसय–इन्द्रिय विषय तेईस
१३ मिच्छा– मिथ्यात्व–दस और पन्द्रह= २५ पच्चीस
१४ तत्त–तत्व–नौ (छोटी नवतत्व के ११५ भेद, बडी नवतत्व के भेदानुभेद अनेक)
१५ आया–आत्मा–आठ

१६ दडय–दडक–चौबीस १७ लेस्सा–लेश्या–छह
१८ दिट्ठि–दृष्टि–तीन १६ ज्झाण–ध्यान–चार
२० दव्व–द्रव्य–छह (तीस भेद)
२१ राक्षि–राशि–दो, जीव, अजीव
२२ गिहत्थवयाणि–गृहस्थव्रत–श्रावक के बारह व्रत
२३ वण्णिव्वय–महाव्रत–साधु के पाच महाव्रत
२४ भग–भागा–उनपचास
२५ चरित्त–चारित्र–पाच

इस प्रकार ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर ने पच्चीस बोल बताकर उनके भेद क्रमश बताये है–१ चउ, २ पच, ३ छय, ४ पच, ५ छय, ६ दसण्ह, ७ पंच, ८ पन्नर, ६ बारस्स, १० अट्ठं, ११ चउदस, १२ तेवीस, १३ दस, १४ नव, १५ अट्ठ, १६ चउवीस, १७ छय, १८ तिण्ह, १६ चउ, २० छय, २१ दो, २२ बारस, २३ पचेव, २४ एगोणपन्नास, २५ पच।

इन पच्चीस बोलो के आधारभूत ग्रन्थो, आगमसूत्रो का विवरण निम्नानुसार है–

(१) गति चार (पन्न॰ २३ वां पद उ॰ दूसरा)
(२) जाति पांच (पन्न॰ २३ वां पद उ॰ दूसरा)
(३) काया छः (ठा॰ ६ सू॰ ४८०) (दशवै॰ अ॰ ४) (उत्त॰अ॰ ३६)
(४) इन्द्रिय पांच (पन्न॰ १५ वां पद) (ठा॰ ५ सू॰ ४३३)
(५) पर्याप्ति छः (भगवती श॰ ३ उ॰ १) (पन्न॰ २८ वां पद)
(६) प्राण दस (ठा॰ १ सू॰ ४८ टीका)
(७) शरीर पॉच (ठा॰ ५ सू॰ ३६५) (पन्न॰ २१ वां पद)
(८) योग पन्द्रह (भग॰ श॰ २५ उ॰ १) (पन्न॰ पद १६)
(६) उपयोग बारह (पन्न॰ २६ वां पद)

(१०) कर्म आठ (पन्न० २३ वां पद) (उत्त० ३३ वां अध्ययन)
(११) गुणस्थान चौदह (समवायांग १४)
(१२) इन्द्रियों के २३ विषय (पन्न० १५ वां पद) (जैन तत्त्व प्रकाश)
(१३) मिथ्यात्व दस (ठाणांग १० सूं ७३४)
(१४) छोटी नव तत्त्व के ११५ भेद (ठाणांग ६ सू० ६६५)
जीव तत्त्व के चौदह भेद (सम० १४) (भग०श०२५ उ० १)
अजीव तत्त्व के चौदह भेद (उत्त० छत्तीसवां अध्ययन)
पुण्य तत्त्व के नौ भेद (ठाणांग ६ सू० ६७६)
पाप तत्त्व के अठारह भेद (भग० श० १ उ० ६)
आश्रव तत्त्व के बीस भेद (ठा० ५ सू० ४१८) (ठा० १० सू० ७०६) (समवायांग ५)
संवर तत्त्व के बीस भेद (ठा० ५ सू० ४१८) (ठा० १० सू० ७०६) (प्रश्न व्या० संवर द्वार) (समवायांग ५)
बंध तत्त्व के चार भेद (ठाणांग ४ सू० २६६)
निर्जरा तत्त्व के बारह भेद (भगवती सूत्र श० २५ उ० ७) (उत्तराध्ययन ३० वां अध्ययन)
मोक्ष तत्त्व के चार भेद (उत्तराध्ययन २८ वां अध्ययन)
(१५) आत्मा आठ (भगवती शतक १२ उद्देशा १०)
(१६) दण्डक चौबीस (ठा० १ सू० ५१) (भगवती २४ वां शतक)
(१७) लेश्या छः (पन्न० १७ वां पद) (उत्त० ३४ वां अध्ययन)
(१८) दृष्टि तीन (ठाणांग ३ सू० १८४) (पन्नवणा पद १६)
(१६) ध्यान चार (भगवती २५ वां शतक उद्देशा ७) (ठाणांग ४ सू० २४७) समवायांग ४) (हरिभद्रीयावश्यक चौथा अध्ययन)
(२०) षट् द्रव्य के ३० भेद (ठाणांग ५ सू० ४४१)

(उत्तराध्ययन २८ वा अध्ययन गाथा ७-८)
(भगवती सूत्र शतक २ उद्देशा १०)

(२१) राशि दो (ठा० २ उ० ४) (सम० २) (उत्त० ३६ वां अध्ययन)

(२२) श्रावक के बारह व्रत (उपासकदशांग अध्ययन १)
(हरिभद्रीयावश्यक अध्ययन ६)

(२३) महाव्रत पॉच (ठा० ५ सू० ३८६) (दशवै० अ० ४)

(२४) भांगा उनपचास (भगवती शतक ८ उद्देशा ५)

(२५) चारित्र पॉच (ठाणाग ५ सू० ४२८) (अनुयोगद्वार)

पहले बोले गति ४

नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्य गति, देवगति।

गति किसको कहते है ? गति नामकर्म के उदय से जीव की पर्याय विशेष को गति कहते है।

अर्थात् ससारी जीव मरकर जहा जाते है, उसे गति कहते है।

नरक गति–

जो जीव अत्यन्त पाप कर्म करते है, वे मरकर नरक मे जाते है, जहा उन्हे घोर कष्टो का सामना करना पडता है।

नरक गति के चार कारण बतलाये गये है–

१ महाआरभ–पन्द्रह कर्मादान का आसक्ति पूर्वक सेवन।

२ महापरिग्रह–महातृष्णा और महाममत्व रखना।

३ मासाहार–मद्य, मास, अडे आदि का आहार करना।

४ पचेन्द्रिय वध–शिकार करना, कसाई का काम करना, मछली अण्डे का व्यापार करना।

तिर्यच गति-

जो जीव झूठ बोलते है, छल–कपट करते हैं, व्यापार मे धोखा देते है, वे मरकर प्राय पशु, पक्षी आदि की योनि मे जाते है। ऐसी

तिर्यच गति मे जाने के निम्नाकित मुख्य चार कारण है–

१ माया–माया करना (कपट करना), माया की बुद्धि रखना।

२ निकृति–गूढ माया करना अर्थात् झूठ सहित माया करना या माया का प्रयत्न करना।

३ अलीक वचन–कन्या, भूमि, पशु आदि के विषय मे झूठ बोलना।

४ कूट तोल कूट माप–देते समय, कम तोलना, कम मापना, लेते समय अधिक तोलना, अधिक मापना तथा वस्तु मे भेल सम्भेल करना।

मनुष्य गति-

जो जीव स्वभाव से भद्र, विनयवान और दयालु होते है, वे मरकर प्राय मनुष्य होते है। मनुष्य गति के चार कारण है–

१ प्रकृति की भद्रता–प्राकृतिक (स्वाभाविक, बनावटी नहीं) भद्रता (सरलता) रखना।

२. प्रकृति की विनीतता–प्राकृतिक विनयशीलता रखना।

३ सानुक्रोशता–अनुकम्पा (दया) भाव रखना।

४ अमत्सरता–मत्सरता (ईर्ष्या बुद्धि) का भाव नही रखना।

देव गति-

जो जीव अत्यन्त शुभ करने वाले है, वे देव गति मे जाते है, अर्थात् देवता बनते है। देवगति के चार कारण है–

१ सराग सयम–प्रशस्त राग सहित साधुत्व पालना।

२ सयमा सयम–श्रावकत्व का पालन करना।

३ बाल तप–आत्म शुद्धि के अतिरिक्त अन्य उद्देश्य की पूर्ति हेतु तप करना।

४ अकाम निर्जरा–अभाव, पराधीनता आदि कारण से अनिच्छापूर्वक परीषह और उपसर्ग सहना करना।

दूसरे बोले जाति ५-

एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय।

जाति किसे कहते है ? जाति नामकर्म के उदय से प्राप्त हुए जीव की एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय रूप पर्याय को जाति कहते है।

जिसमे जीव का जन्म हो अर्थात् समान इन्द्रिय वाले जीवो के समूह को जाति कहते है। अन्य शब्दो मे कहे तो अनेक व्यक्तियो मे एकता की प्रतीति कराने वाले समान धर्म को जाति कहते है। जैसे– गोत्व (गायपना) सभी भिन्न–भिन्न वर्ण की गोओ मे एकता का बोध कराता है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय जाति एक इन्द्रिय (स्पर्श इन्द्रिय) वाले, दो इन्द्रिय (स्पर्श और रखना) वाले जीवो मे एकता का ज्ञान कराती है।

जाति के पाच भेद हैं–

१ **एकेन्द्रिय**–जिन जीवो के केवल स्पर्शन नामक एक ही इन्द्रिय होती है, वे एकेन्द्रिय कहलाते है। जैसे–मिट्टी, पत्थर, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के जीव।

२ **द्वीन्द्रिय**–(बे–इन्द्रिय) जिन जीवो के स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रिया होती है, वे द्वीन्द्रिय कहलाते है। जैसे–लट, शख, सीप, अलसिया आदि।

३ **त्रीन्द्रिय**–जिन जीवो के स्पर्शन, रसना और नासिका–ये तीन इन्दिया हो, वे त्रीन्द्रिय कहलाते है। जैसे–जू, लीख, चींटी, मकोडा, कुथुवा आदि।

४ **चतुरिन्द्रिय**–जिन जीवो के स्पर्श, जिह्वा, नासिका और नेत्र– ये चार इन्द्रिया हो, वे चतुरिन्द्रिय कहलाते है। जैसे–मक्खी, मच्छर, भवरा इत्यादि।

५ **पंचेन्द्रिय**–जिन जीवो के स्पर्शन, रसना, नासिका, चक्षु और श्रोत्र–ये पांचो ही इन्द्रिया हो, वे पचेन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे–मनुष्य, पशु–पक्षी (गाय, भैस, कौआ) सर्प, मच्छ, मगर, नारकीय और देवता आदि।

पचेन्द्रिय जीव मन वाले (सज्ञी) भी होते हैं और बिना मन वाले (असज्ञी) भी होते है।

तीसरे बोले काया ६-

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय।

काया किसको कहते है ? त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से जीव जिस पिण्ड (शरीर) मे उत्पन्न हो, उसे काया कहते है। शरीर को काय कहते है और समूह को भी काय कहते है। जो जीव चल–फिर सकते हैं वे त्रस काय–द्वीन्द्रिय से पचेन्द्रिय–कहलाते है तथा जो स्थिर रहते अर्थात् चल–फिर नहीं सकते वे स्थावर–पृथ्वी, अग्नि, पानी, हवा, वनस्पति के जीव कहलाते है।

(१) **पृथ्वीकाय**–मिट्टी, हींगलू, हडताल, पत्थर, हीरा, पन्ना आदि सात लाख योनि है। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और सण्हा (श्लक्ष्ण) पृथ्वी की उत्कृष्ट स्थिति १ हजार वर्ष, शुद्ध पृथ्वी की १२ हजार वर्ष, बालू पृथ्वी की १४ हजार वर्ष, सखरा पृथ्वी की १८ हजार वर्ष और खर पृथ्वी की २२ हजार वर्ष की है (जीवाभिगम)। एक काकरे मे असख्याता जीव श्री भगवान् ने फरमाये है। पृथ्वीकाय का वर्ण पीला है। स्वभाव कठोर है, सठाण (सस्थान) मसूर की दाल के आकार का है। एक पर्याप्ता की नेसराय मे असख्याता अपर्याप्ता उत्पन्न होते है।

(२) **अप्काय**–बरसात का पानी, ओस का पानी, गडे का पानी, समुद्र का पानी, धुँवर का पानी, कुआ बावडी का पानी आदि सात लाख

योनि है। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है। एक पानी की बूद मे असख्याता जीव श्री भगवान् ने फरमाये है। एक पर्याप्ता की नेसराय मे असख्याता अपर्याप्ता उत्पन्न होते है। अप्काय का वर्ण लाल है। स्वभाव ढीला है। सठाण पानी के परपोटे माफिक है।

(३) **तेउकाय (तेजस्काय)**—झाल की अग्नि, बिजली की अग्नि, बास की अग्नि, उल्कापात आदि सात लाख योनि है। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन रात दिन की है। एक अग्नि की चिनगारी मे असख्यात जीव श्री भगवान् ने फरमाये है। एक पर्याप्ता की नेसराय मे असख्याता अपर्याप्ता उत्पन्न होते है। तेउकाय का वर्ण सफेद है। स्वभाव उष्ण (गर्म) है। सठाण (सस्थान) सूई के भारे के माफिक है। सूई की तरह अग्नि की झाल नीचे से मोटी और ऊपर से पतली होती है।

(४) **वायुकाय**—उक्कलिया वाय, मडलिया वाय, घण वाय, तणु वाय, पूर्व वाय, पश्चिम वाय, आदि सात लाख योनि है। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की है। एक फूक से असंख्याता वायुकाय के जीवो की हिसा होना श्री भगवान् ने फरमाया है। एक पर्याप्ता की नेसराय मे असख्याता अपर्याप्ता उत्पन्न होते है। वायुकाय का वर्ण हरा है। स्वभाव चलना (बाजणा) है। सठाण (सस्थान) ध्वजा (पताका) के आकार का है।

(५) **वनस्पतिकाय (बादर)** के दो भेद—प्रत्येक, साधारण। वनस्पति का वर्ण काला है। स्वभव सठाण नाना प्रकार का है। एक शरीर मे एक जीव होवे उसको प्रत्येक कहते है। जैसे—आम, अगूर, केला, बड, पीपल आदि १० लाख योनि है। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की है।

कन्द मूल की जाति को साधारण वनस्पति कहते है, जैसे लहशुन, सकरकन्द, अदरख, आलू, रतालू, मूली, हरी हलदी, गाजर, लीलण, फूलण आदि १४ लाख योनि है। कन्दमूल मे एक सूई के अग्रभाग मे असख्याती श्रेणिया है। एक एक श्रेणी मे असख्याता प्रतर है। एक एक प्रतर मे असंख्याता गोला है। एक एक गोले मे असंख्याता शरीर है। एक एक शरीर मे अनन्त जीव है। आयुष्य जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

(६) **त्रसकाय**–जो जीव हलन चलन करे, छाया से धूप मे आवे और धूप से छाया मे जावे उसको त्रस कहते है। उसके चार भेद है। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय। (१) बेइन्द्रिय–एक काया, दूसरा मुख, ये दो इन्द्रिया जिसके हो, उसको बेइन्द्रिय कहते है–जैसे शख, कोडी, सीप, लट, कोडा, अलसिया, कृमि (चूरणीया), बाला आदि दो लाख योनि है। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बारह वर्ष की है। (२) **तेइन्द्रिय**–एक काया, दूसरा मुख, तीसरा नाक, ये तीन इन्द्रिया जिसके हो, उसको तेइन्द्रिय कहते है–जैसे जू, लीख, चांचड, माकड, कीड़ा, कुथुआ, कानखजूरा, आदि दो लाख योनि है। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट उनपचास दिन की है। (३) **चउरिन्द्रिय**–एक काया, दूसरा मुख, तीसरा नाक, चौथी आख ये चार इन्द्रियॉ जिसके हो, उसको चउरिन्द्रिय कहते है–जैसे मक्खी, डास, मच्छर, भॅवरा, टीडी, पतगिया, कसारी आदि दो लाख योनि है। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट ६ मास की है। (४) **पंचेन्द्रिय**–एक काया, दूसरा मुख, तीसरा नाक, चौथी आख, पाचवा कान, ये पॉच इन्द्रिया जिसके होवे उसको पचेन्द्रिय कहते है, जैसे गाय, भैस, बैल, हाथी, घोडा, मनुष्य आदि २६ लाख (४ लाख देवता, ४ लाख नारकी, ४ लाख तिर्यच पचेन्द्रिय, १४ लाख मनुष्य) योनि हैं।

आयुष्य–नारकी की जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की। तिर्यच की ज० अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की। मनुष्य की ज० अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम की। देवता की जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की है।

कुल कोडी किसको कहते है ? कुलो के प्रकार (भेद) को कुल कोडी कहते है। जैसे–अमुक प्रकार के रूप रसादि वाले परमाणुओ से बने हुए हो, वह कुल का एक प्रकार, उनसे भिन्न भिन्न प्रकार के रूप रसादि वाले परमाणुओ से बने हुए हो, वह दूसरा प्रकार। इस तरह अमुक प्रकार के परमाणुओ के विकारजन्य ही कुलो के भेद होते है अर्थात् जैसे एक छाणे–कडे (पोटे) मे बिच्छू के कुल बहुत उपजते है, वैसे ही एकेन्द्रिय मे भी बहुत कुल उपजते है, उसको कुल कोडी कहते है।

छ काय जीवो की कुलकोडी का खुलासा इस प्रकार है–

(१) पृथ्वीकाय की १२ लाख, (२) अप्काय की ७ लाख, (३) तेउकाय की ३ लाख, (४) वायुकाय की ७ लाख, (५) वनस्पतिकाय की २८ लाख, (६) त्रसकाय मे बेइन्द्रिय की ७ लाख, तेइन्द्रिय की ८ लाख, चौइन्द्रिय की ६ लाख, पचेन्द्रिय जलचर की १२ लाख, स्थलचर, अर्थात् हाथी, घोडे आदि चौपायो की १० लाख, खेचर अर्थात् पक्षियो की १२ लाख, उरपरिसर्प अर्थात् छाती से चलने वाले साप आदि की १० लाख, भुजपरिसर्प अर्थात् भुजा से चलने वाले नेवला चूहे आदि की ६ लाख, देवो की २६ लाख, नारकी जीवो की २५ लाख, मनुष्यो की १२ लाख। कुल मिला कर १,६७,५०, ००० एक करोड सत्तानवे लाख पचास हजार कुल कोडी है।

छ:काय का अल्पबहुत्व

सब से कम त्रसकाय, उससे तेउकाय असख्यात गुणा, उससे पृथ्वीकाय विशेषाधिक (दुगुने से कुछ कम), उससे अप्काय विशेषाधिक, उससे वायुकाय विशेषाधिक, उससे वनस्पतिकाय

अनन्तगुणा है।

छः काय का विशेष स्वरूप

(१) इन्दथावरकाय (२) बंभथावरकाय (३) सिप्पीथावरकाय (४) सुमति थावरकाय, (५) पयावच्चथावरकाय (६) जगमकाय।

(१) पृथ्वीकाय का इन्द्र देवता मालिक है इसलिये इसे इन्दथावरकाय कहते है। (२) अप्काय का ब्रह्म देवता मालिक है इसलिए इसे बभथावरकाय कहते है। (३) तेउकाय का शिल्पी नामक देवता स्वामी है इसलिए इसे सिप्पीथावरकाय कहते है। (४) वायुकाय का सुमति नामक देवता मालिक है इसलिये इसे सुमतिथावरकाय कहते है। (५) वनस्पतिकाय का पयावच्च यानी प्रजापति देव मालिक है इसलिए इसे पयावच्चथावरकाय कहते है। (६) त्रसकाय का जगम नामक देवता मालिक है इसलिये इसे जगमकाय कहते है।

छह काय के अन्तर्गत एक मुहूर्त मे एक जीव उत्कृष्ट कितने भव करता है ?

एकेन्द्रिय–पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय–एक मुहूर्त मे उत्कृष्ट १२,८२४ भव करता है। बादर वनस्पतिकाय एक मुहूर्त मे उत्कृष्ट ३२,००० भव करता है और सूक्ष्म वनस्पतिकाय एक मुहूर्त मे उत्कृष्ट ६५,५३६ भव करता है।

बेइन्द्रिय–एक मुहूर्त मे उत्कृष्ट ८० भव करता है।

तेइन्द्रिय–एक मुहूर्त मे उत्कृष्ट ६० भव करता है।

चउरिन्द्रिय–एक मुहूर्त मे उत्कृष्ट ४० भव करता है।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय–एक मुहूर्त मे २४ भव करता है।

संज्ञी पंचेन्द्रिय–एक मुहूर्त मे १ भव करता है।

चौथे बोले इन्द्रिय ५-

श्रोत्र इन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना इन्द्रिय, स्पर्शन इन्द्रिय।

इन्द्रिय किसको कहते है ? जीव अर्थात् इन्द्र के चिन्ह को इन्द्रिय कहते है अर्थात् इन्द्रिय से जीव को पहचाना जाता है, जैसे स्पर्शन इन्द्रिय से एकेन्द्रिय–वृक्षादि जीव पहचाने जाते है। दो इन्द्रिय (स्पर्शन, रसना–जीभ) से बेइन्द्रिय जीव लट आदि पहचाने जाते है। अन्य शब्दो मे कहे तो जिसके द्वारा जीव को ज्ञान होता है, उसे इन्द्रिय कहते है। जैसे चक्षु इन्द्रिय (आख) से देखना, कान से श्रवण करना आदि।

आत्मा, सर्व वस्तुओ का ज्ञान करने तथा भोग करने रूप ऐश्वर्य से सम्पन्न होने से इन्द्र कहलाता है अत आत्मा के चिन्ह को इन्द्रिय कहते हैं।

अथवा

इन्द्र अर्थात् आत्मा द्वारा दृष्ट, रचित, सेवित और दी हुइ होने से श्रोत्र, चक्षु आदि इन्द्रिया कहलाती है।

इन्द्रिय के दो भेद है–(१) द्रव्येन्द्रिय (२) भावेन्द्रिय।

द्रव्येन्द्रिय–चक्षु आदि इन्द्रियो के बाह्य और आभ्यन्तर पौद्गलिक आकार (रचना) को द्रव्येन्द्रिय कहते है।

भावेन्द्रिय–आत्मा ही भावेन्द्रिय है। भावेन्द्रिय लब्धि और उपयोग रूप होती है।

पाच इन्द्रियो के २३ विषय होते है, जो निम्नानुसार है–

श्रोत्रेन्द्रिय के तीन विषय–जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द।

चक्षु इन्द्रिय के पाच विषय–काला, नीला, लाल, पीला और सफेद।

घ्राणेन्द्रिय के दो विषय–सुगन्ध और दुर्गन्ध।

रसना इन्द्रिय के पाच विषय–तीखा, कडवा, कषैला, खट्टा और मीठा।

स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय–कर्कश, मृदु, लघु, गुरु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण।

पॉचवें बोले पर्याप्ति छः-

आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति (वचनपर्याप्ति), मन पर्याप्ति।

पर्याप्ति किसको कहते है ? आहारवर्गणा, शरीरवर्गणा, इन्द्रिय वर्गणा, श्वासोच्छ्वासवर्गणा, भाषावर्गणा और मनोवर्गणा के परमाणुओं को शरीर, इन्द्रिय आदि रूप मे परिणमाने (परिवर्तन करने) की शक्ति की पूर्णता को पर्याप्ति कहते है।

अन्य शब्दो मे कहे तो पुद्‌गलो को ग्रहण करने तथा उन्हे आहार, शरीर, इन्द्रिय आदि रूप परिणमाने की आत्मा की शक्ति विशेष को पर्याप्ति कहते है।

(१) **आहार पर्याप्ति**–जिस शक्ति से जीव आहार योग्य बाह्य पुद्‌गलो को ग्रहण कर उसे खल और रस रूप मे बदलता है उसे आहार पर्याप्ति कहते है।

(२) **शरीर पर्याप्ति**–जिस शक्ति द्वारा जीव रस रूप मे परिणत आहार को रस, खून, मास, चर्बी, हड्‌डी, मज्जा और वीर्य रूप सात धातुओ मे बदलता है, उसे शरीर पर्याप्ति कहते है। *

(३) **इन्द्रिय पर्याप्ति**–जिस शरीर द्वारा जीव सात धातुओ मे परिणत आहार को इन्द्रियो के रूप मे परिवर्तित करता है, उसे इन्द्रिय पर्याप्ति कहते है। अथवा पाच इन्द्रियो के योग्य पुद्‌गलो को

* आहार पर्याप्ति द्वारा बने हुए रस से शरीर पर्याप्ति द्वारा बना हुआ रस भिन्न प्रकार का है। शरीर पर्याप्ति द्वारा बनने वाला रस ही शरीर के बनने मे उपयोगी होता है।

ग्रहण करके अनाभोग निवर्तित वीर्य द्वारा उन्हे इन्द्रिय रूप मे लाने की जीव की शक्ति इन्द्रिय पर्याप्ति कहलाती है।

(४) **श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति**–जिस शक्ति के द्वारा जीव श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गलो को श्वासोच्छ्वास के रूप मे ग्रहण करता है और छोडता है उसे श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते है। इसी को प्राणापान पर्याप्ति एव उच्छ्वास पर्याप्ति भी कहते है।

(५) **भाषा पर्याप्ति**–जिस शक्ति के द्वारा जीव भाषा योग्य भाषा वर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके उन्हे भाषा के रूप मे परिणत करता तथा छोडता है उसे भाषा पर्याप्ति कहते है।

(६) **मनः पर्याप्ति**–जिस शक्ति के द्वारा जीव मन योग्य मनोवर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके उन्हे मन के रूप मे परिणत करता है तथा उनका अवलम्बन लेकर छोडता है उसे मन पर्याप्ति कहते है।

मृत्यु के बाद जीव उत्पत्ति स्थान मे पहुच कर कार्माण शरीर द्वारा पुद्गलो को ग्रहण करता है और उनके द्वारा यथायोग्य सभी पर्याप्तियो को बनाना शुरू कर देता है। औदारिक शरीरधारी जीव के आहार पर्याप्ति एक समय मे और शेष पर्याप्तियॉ अर्न्तमुहूर्त मे क्रमश पूर्ण होती है। वैक्रिय और आहारक शरीरधारी जीव के आहार पर्याप्ति एक समय मे पूर्ण होती है फिर शरीर पर्याप्ति अर्न्तमुहूर्त मे और शेष पर्याप्तिया एक समय मे क्रमश पूर्ण होती है।

छठे बोले प्राण १०-

श्रोत्रेन्द्रिय बलप्राण, चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण, घ्राणेन्द्रिय बलप्राण, रसनेन्द्रिय बलप्राण, स्पर्शनेन्द्रिय बलप्राण, मनोबलप्राण, वचनबलप्राण, कायबलप्राण, श्वासोच्छ्वास बलप्राण, आयुष्य बलप्राण। '

प्राण किसको कहते है ? जिसके सयोग से यह जीव

जीवन अवस्था को प्राप्त हो और वियोग से मरण अवस्था को प्राप्त हो, उसको प्राण कहते है। अथवा जीवन जीने की शक्ति विशेष को प्राण कहते है।

दस प्राणो मे मूल प्राण आयुकर्म है, शेष प्राण इसके कार्य साधक है। यदि आयुष्य बलप्राण न रहे तो शेष सभी प्राण निष्फल हो जाते है।

इसी प्रकार प्राण के बारे मे स्थानाग सूत्र ५, उद्देशा २, सूत्र ४३० मे ससारी जीव के चार प्रकार बताये गये है–

(१) प्राण–विकलेन्द्रिय अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवो को प्राण कहते है।

(२) भूत–वनस्पतिकाय को भूत कहते है।

(३) जीव–पचेन्द्रिय प्राणियो को जीव कहते है।

(४) सत्त्व–पृथ्वीकाय, अप्‌काय, तेउकाय और वायुकाय–इन चार स्थावर जीवो को सत्त्व कहते है।

इस सन्दर्भ मे ज्ञातव्य है कि श्री भगवती सूत्र शतक २, उद्देशा १ मे भिन्न–भिन्न धर्मो की विवक्षा से जीव के छह नाम दिये गये है, जो इस प्रकार है–

(१) प्राण–प्राणवायु को खीचने और बाहर निकालने अर्थात् श्वासोच्छ्‌वास लेने के कारण जीव को प्राण कहा जाता है।

(२) भूत–तीनो कालो मे विद्यमान होने से जीव को भूत कहा जाता है।

(३) जीव–जीता है अर्थात् प्राण धारण करता है और आयुकर्म तथा जीवत्व का अनुभव करता है, इसलिए यह जीव है।

(४) सत्त–(सक्त, शक्त अथवा सत्त्व) जीव शुभाशुभ कर्मो के साथ सम्बद्ध है। अच्छे और बुरे काम करने मे समर्थ है या

सत्तावाला है। इसलिए इसे सत्त (क्रमश सक्त, शक्त, सत्त्व) कहा जाता है।

(५) विज्ञ–कडवे, कषैले, खट्टे, मीठे रसो को जानता है, इसलिए जीव विज्ञ कहलाता है।

(६) वेद–जीव सुख–दु खो का भोग करता है, इसलिए वह वेद कहलाता है।

दस प्राणो की सक्षिप्त परिभाषाए निम्नानुसार है–

(१) से (५) पाचो ही इन्द्रियो के द्वारा अपने अपने विषयो को ग्रहण करने की शक्ति विशेष को क्रमश श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण (श्रवण=सुनना), चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण (देखना), घाणेन्द्रिय बल प्राण (घ्राण=सूघना), रसनेन्द्रिय बल प्राण (रसन=चखना) एव स्पशनेन्द्रिय बल प्राण (स्पर्शन=छूना) कहते है।

(६) मनो बलप्राण–द्रव्य मन की सहायता से किसी भी प्रकार का चिन्तन मनन करने की शक्ति विशेष को मनोबलप्राण कहते है।

(७) वचन बलप्राण–भाषा वर्गणा के पुद्गलो की सहायता से वचन बोलने की शक्ति विशेष को वचन बलप्राण कहते है।

(८) काय बलप्राण–औदारिक वैक्रिय आदि शरीर के माध्यम से चलते फिरने की शक्ति विशेष को काय बलप्राण कहते है।

(९) श्वासोच्छवास बलप्राण–श्वासोच्छवास वर्गणा के पुद्गलो की सहायता से श्वास लेने और निकालने की शक्ति विशेष को श्वासोच्छवास बलप्राण कहते है।

(१०) आयुष्य बलप्राण–एक निश्चित समय तक निश्चित भव मे जीवित रहने की शक्ति विशेष को आयुष्य बलप्राण कहते है।

एकेन्द्रिय मे ४ बलप्राण होते है–स्पर्शनेन्द्रिय, काय, श्वासोच्छवास और आयुष्य बलप्राण।

द्वीन्द्रिय मे ६–पूर्वोक्त ४ के अतिरिक्त रसनेन्द्रिय और वचन बल प्राण।

त्रीन्द्रिय मे ७–पूर्वोक्त ६ और घ्राणेन्द्रिय बलप्राण।

चतुरिन्द्रिय मे ८–पूर्वोक्त ७ और चक्षुरिन्द्रिय बलप्राण।

असज्ञी पचेन्द्रिय मे ६ प्राण–पूर्वोक्त ८ और श्रोत्रेन्द्रिय बलप्राण।

सज्ञी पचेन्द्रिय मे १० प्राण–पूर्वोक्त ६ और मनोबलप्राण।

ये सभी दस प्राण द्रव्य है जबकि ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति ये चार भाव प्राण है।

चारो भाव प्राण सभी संसारी व सिद्ध जीवो मे सदैव पाये जाते है जबकि द्रव्य प्राण मात्र संसारी जीवो मे ही पाये जाते है, सिद्धो मे नही।

प्राण एक शक्ति है, जो दस माध्यमो से प्रकट होती है, जिस प्रकार बिजली का करट एक ही है लेकिन उस करट से चलने वाले साधन अलग अलग है। जैसे–बल्ब, पखा, कूलर आदि। उसी प्रकार प्राण तो एक ही हैं लेकिन उसके साधन, आख, कान आदि अलग–अलग होने से प्राण १० कहे गये है।

सातवें बोले शरीर ५-

औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण।

शरीर किसे कहते है ? जीव के क्रिया करने के साधन को शरीर कहते है अथवा ससारी जीव जिसमे रहकर अपने शुभाशुभ कर्मो का भोग करे उसे शरीर कहते है।

अथवा

जो उत्पत्ति समय से लेकर प्रतिक्षण जीर्ण–शीर्ण होता रहता है, तथा शरीर नाम कर्म के उदय से उत्पन्न होता है, वह शरीर कहलाता है।

शरीर के पाच भेद होते है, जिनका स्वरूप इस प्रकार है–

(१) औदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उदार अर्थात् प्रधान अथवा स्थूल पुद्‌गलो से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है अर्थात् रक्त, मास, अस्थि आदि पुद्‌गलो से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है। मनुष्य और तिर्यच के स्थूल शरीर को औदारिक शरीर कहते है। पाच स्थावरो का भी मूल शरीर औदारिक ही है।

अन्य शब्दो मे कहा जा सकता है कि जिस शरीर मे रहकर जीव अपने सभी कर्मो का क्षय कर सके तथा प्राण निकलने के बाद जिसका शव (कलेवर) पडा रहे उसे भी औदारिक शरीर कहते है। इसका स्वभाव सडना, गलना, विध्वस (विनाश) होना है।

(२) वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं ?

जिस शरीर मे विविध तथा विशेष प्रकार की क्रियाए होती है अर्थात् जिसमे छोटे बडे, एक अनेक आदि नाना प्रकार के रूप बनाने की शक्ति हो, उसको वैक्रिय कहते है तथा देव और नारकी जीवो के शरीर को वैक्रिय शरीर कहते है अथवा जिसमे हाड, मास, लोही, राध नहीं हो तथा मरने के बाद कपूर की तरह बिखर जाय उसको वैक्रिय शरीर कहते है। यह दो प्रकार का होता है–(i) जन्म से ही प्राप्त भवप्रत्यय या औपपातिक वैक्रिय शरीर देवता और नैरयिक के होता है तथा (ii) लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर जो मनुष्य और तिर्यच के होता है। यह तप आदि साधना से प्राप्त होता है।

(३) आहारक शरीर किसको कहते है ?

छठे गुणस्थानवर्ती चौदह पूर्वधारी मुनिराज को १४ पूर्व चितारते हुए कोई शका पैदा हो अथवा कोई वादी आकर मुनिराज को प्रश्न पूछे उसका जवाब १४ पूर्वो मे न हो अथवा उस समय

मुनिराज का उपयोग न लगे तब वे मुनिराज एक हाथ का पुतला निकाल कर केवली भगवान् के पास शका निवारण करने के लिए अथवा प्रश्न का उत्तर पूछने के लिए उसे भेजते है। यदि वहा से केवली भगवान् विहार कर गये हो तो उस एक हाथ के पुतले मे से मुण्ड हाथ का पुतला निकलता है। जहाँ केवली भगवान् विराजते है वह वहाँ जाता है और प्रश्न का उत्तर लेकर आता है। आकर वह मुण्ड हाथ का पुतला एक हाथ के पुतले मे प्रवेश करता है। फिर वह एक हाथ का पुतला आकर मुनिराज के शरीर मे प्रवेश करता है। फिर मुनिराज प्रश्न का उत्तर देते है, उसको आहारक शरीर कहते है।

यह शरीर मनुष्यो को ही होता है, मनुष्यो मे भी जो मुनि चौदह पूर्वधारी अप्रमत्त और ऋद्धिमत हो, उन्ही को आहारक लब्धि ा के रूप मे होता है। यह अति विशुद्ध स्फटिक के सदृश्य एक हाथ के पुतले के बराबर होता है। सशय निवारण करने के पश्चात् यह शरीर अपने मूल शरीर मे प्रविष्ट हो जाता है। यह सारी प्रक्रिया एक बार पलक झपकाए उससे भी कम समय मे पूरी हो जाती है।

(४) तैजस शरीर किसको कहते है ?

जो ग्रहण किये हुए आहार को पचावे उसको तैजस शरीर कहते है। तप व साधना द्वारा प्राप्त यह शरीर तेजोमय पुद्गलो का होता है। प्राणियो के शरीर मे विद्यमान उष्णता से इस शरीर का अस्तित्व सिद्ध होता है।

(५) कार्मण शरीर किसको कहते हैं ?

ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मो के समूह को अर्थात् कर्मो के खजाने को कार्मण शरीर कहते है। ससारी जीव के तैजस कार्मण शरीर हर वक्त साथ ही रहते है।

चूकि कर्म पुद्गलो को ही कार्मण शरीर कहते है, यही शरीरो का बीज है। मृत्यु के अनन्तर भी ससारी जीव जब एक से दूसरी गति मे जाते है तब तैजस और 'कार्मण शरीर सा अवश्य रहते है। जब तक ये दोनो शरीर आत्मा से पूर्ण रूप मे ' नही होते तब तक जीव मोक्ष को प्राप्त नही कर सकता है। क शरीर पाचो शरीरो मे सबसे मुख्य और सूक्ष्म होता है।

आठवे बोले योग १५-

१ सत्यमनोयोग, २ असत्य मनोयोग, ३ मिश्र मनोयोग, ४ व्य मनोयोग, ५ सत्य वचन योग, ६ असत्य वचन योग, ७ मिश्र वचन ८ व्यवहार वचन योग, ९ औदारिक काययोग, १० औदारिक काययोग, ११ वैक्रिय काययोग, १२ वैक्रिय मिश्र काययोग, आहारक काययोग, १४ आहारक मिश्र काययोग, १५ कार्मण काय

योग किसको कहते है ? वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपश क्षय होने पर मन वचन काया के निमित्त से आत्मप्रदेशो के परिस् होने को योग कहते है। योग के दो भेद होते है–१ भावयो द्रव्ययोग। भावयोग किसको कहते है ? पुद्गलविपाकी शरीर अगोपाग नाम कर्म के उदय से मनोवर्गणा और कायवर्गण अवलम्बन से कर्म नोकर्म ग्रहण करने की जीव की शक्ति विशे भावयोग कहते है। द्रव्ययोग किसको कहते है ? इसी भावयो निमित्त से आत्मप्रदेशो के परिस्पन्दन (चचल होने) को द्रव् कहते है।

अन्य शब्दो मे कहा जा सकता है कि मन, वचन, काय शुभाशुभ प्रवृत्ति को योग कहते है। इसके (आलम्बन के भेद से) भेद है–१ मनोयोग, २ वचन योग और ३ काय योग।

मनोयोग-

नोइन्द्रिय मति ज्ञानावरण के क्षयोपशम स्वरूप आन्तरिक मनोलब्धि होने पर मनोवर्गणा के आलम्बन से मन के परिणाम की ओर झुके हुए आत्मप्रदेशो का जो व्यापार होता है, उसे मनोयोग कहते है।

वचन योग-

मति ज्ञानावरण, अक्षर श्रुत ज्ञानावरण आदि कर्म के क्षयोपशम से आन्तरिक वाग्लब्धि उत्पन्न होने पर वचन वर्गणा के आलम्बन से भाषा परिणाम की ओर अभिमुख आत्मप्रदेशो का जो व्यापार होता है, उसे वचनयोग कहते है।

काययोग-

औदारिक आदि शरीर वर्गणा के पुद्गलो के आलम्बन से होने वाले आत्मप्रदेशो के व्यापार को काययोग कहते है।

इनके क्रमश चार (मन के), चार (वचन के) और सात (काया के), इस प्रकार पन्द्रह भेद हो जाते है।

(१) **सत्य मनोयोग**–मन का जो व्यापार सत् अर्थात् सज्जन पुरुष या साधुओ के लिए हितकारी हो, उन्हे मोक्ष की ओर ले जाने वाला हो उसे सत्य मनोयोग कहते है अथवा जीवादि पदार्थों के अनेकान्त रूप यथार्थ विचार को सत्य मनोयोग कहते हैं।

(२) असत्य मनोयोग–सत्य से विपरीत अर्थात् ससार की ओर ले जाने वाले मन के व्यापार को असत्य मनोयोग कहते है अथवा जीवादि पदार्थ नही है, एकान्त सत् है इत्यादि एकान्त रूप मिथ्या विचार असत्य मनोयोग है।

(३) सत्यमृषा मनोयोग–व्यवहार नय से ठीक होने पर भी निश्चय नय से जो विचार पूर्ण सत्य न हो, जैसे–किसी उपवन मे

धव, खैर, पलाश आदि के कुछ पेड होने पर भी अशोकवृक्ष अधिक होने से उसे अशोक वन कहना। वन मे अशोकवृक्षो के होने से यह बात सत्य है और धव, पलाश आदि के वृक्ष होने से मृषा (असत्य) भी है।

(४) असत्यामृषा मनोयोग–जो विचार सत्य नही है और असत्य भी नही है उसे असत्यामृषा मनोयोग कहते है।

(५–६–७–८) उपर्युक्त मनोयोग के अनुसार वचन योग के भी चार भेद है–(५) सत्य वचन योग (६) असत्य वचन योग (७) सत्य मृषा वचन योग (८) असत्यामृषा वचन योग।

काय योग के सात भेद

(९) **औदारिक शरीर काय योग**–केवल औदारिक शरीर के द्वारा होने वाले शक्ति के व्यापार को औदारिक काय योग कहते है। यह योग सब औदारिक शरीरी मनुष्य और तिर्यचो को पर्याप्त दशा मे होता है।

(१०) **औदारिक मिश्र शरीर काय योग**–औदारिक शरीर की अपरिपूर्णता पर्यत औदारिक मिश्र काययोग होता है।

(११) **वैक्रिय शरीर काय योग**–वैक्रिय शरीर पर्याप्ति के कारण पर्याप्त जीवो के होने वाला वैक्रिय शरीर का व्यापार वैक्रिय शरीर काय योग है। यह मनुष्यो और तिर्यचो को वैक्रिय लब्धि के बल से वैक्रिय शरीर धारण कर लेने पर होता है।

(१२) **वैक्रिय मिश्र शरीर काय योग**–वैक्रिय शरीर की अपरिपूर्णता पर्यत वैक्रिय मिश्र काय योग होता है।

(१३) **आहारक शरीर काय योग**–आहारक शरीर पर्याप्ति के द्वारा पर्याप्त जीवो को आहारक शरीर काय योग होता है।

(१४) **आहारक मिश्र शरीर काय योग**–आहारिक शरीर की अपरिपूर्णता पर्यत आहारक मिश्र काय योग होता है।

(१५) **तैजस कार्मण शरीर योग**–विग्रह गति मे तथा सयोगी केवली को समुद्घात के तीसरे, चौथे और पाचवे समय मे तैजस कार्मण शरीर योग होता है। तैजस और कार्मण सदा एक साथ रहते है, इसलिए उनके व्यापार रूप काय योग को भी एक ही माना है।

नवें बोले उपयोग १२-

पाच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार दर्शन। ज्ञान ५–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान केवलज्ञान। अज्ञान ३–मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभगज्ञान, दर्शन ४–चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन।

उपयोग किसको कहते है ? सामान्य विशेष रूप से वस्तु के जानने को उपयोग कहते है।

उपयोग के दो भेद है–(१) ज्ञान (२) दर्शन।

ज्ञान–जो उपयोग पदार्थो के विशेष धर्मो के जाति, गुण, क्रिया आदि का ग्राहक है, वह ज्ञान कहलाता है। ज्ञान को साकार उपयोग कहते है।

दर्शन–जो उपयोग पदार्थो के सामान्य धर्म का अर्थात् सत्ता का ग्राहक है, उसे दर्शन कहते है। दर्शन को निराकार उपयोग कहते है।

साकारोपयोग का सरल अर्थ है–सचेतन और अचेतन पदार्थो को पर्याय सहित जानना।

इसके आठ भेद हैं–पाच ज्ञान और तीन अज्ञान।

(१) **मति ज्ञान**–इन्द्रिय और मन की सहायता से योग्य स्थान मे रहे हुए पदार्थो को स्पष्ट रूप से जानना।

(२) **श्रुत ज्ञान**–वाच्य वाचक भाव संबंध पूर्वक शब्द के

साथ सम्बन्ध रखने वाले अर्थ को ग्रहण करना। यह ज्ञान भी इन्द्रिय मनोनिमित्तक होता है और इन्द्रिय तथा मन की सहायता से ही पदार्थ को विषय करता है।

(३) **अवधि ज्ञान**—इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना ही मर्यादापूर्वक रूपी द्रव्यो को विषय करने वाला अवधिज्ञान कहलाता है।

(४) **मन.पर्याय ज्ञान**—ढाई द्वीप और समुद्रो मे रहे हुए सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के मनोगत भावो को जानने वाला ज्ञान मन पर्यय ज्ञान कहलाता है। इसे मन पर्ययज्ञान और मन पर्याय भी कहते है।

(५) **केवल ज्ञान**—मति आदि ज्ञानो की अपेक्षा (सहायता) के बिना भूत, भविष्यत् और वर्तमान तथा तीनो लोकवर्ती समस्त पदार्थो को विषय करने वाला ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है। इसका विषय अनन्त है।

मतिज्ञान, श्रुत ज्ञान और अवधिज्ञान जब मिथ्यात्व मोहनीय से सयुक्त हो जाते है तब वे मलिन हो जाते है, अर्थात् अज्ञान रूप हो जाते है। उस दशा मे वे अनुक्रम से (६) मति अज्ञान (७) श्रुत अज्ञान और (८) विभग ज्ञान कहलाते है।

अनाकारोपयोग (दर्शन) के चार भेद है—

(९) **चक्षु दर्शन**—आख द्वारा पदार्थो का जो सामान्य ज्ञान होता है उसे चक्षुदर्शन कहते है।

(१०) **अचक्षुदर्शन**—चक्षु इन्द्रिय को छोडकर शेष चारो इन्द्रियो और मन के द्वारा होने वाला पदार्थो का सामान्य ज्ञान अचक्षु—दर्शन है।

(११) **अवधिदर्शन**—मर्यादित क्षेत्र मे रूपी द्रव्यो का सामान्य

ज्ञान अवधिदर्शन है।

(१२) **केवल दर्शन**–दूसरे ज्ञान की अपेक्षा बिना सम्पूर्ण संसार के पदार्थो का सामान्य ज्ञान रूप दर्शन केवल दर्शन कहलाता है।

दसवें बोले कर्म ८-

१ ज्ञानावरणीय कर्म, २ दर्शनावरणीय कर्म, ३ वेदनीय कर्म, ४ मोहनीय कर्म, ५ आयु कर्म, ६ नाम कर्म, ७ गौत्र कर्म, ८ अन्तराय कर्म।

कर्म किसको कहते है ? जीव के राग द्वेष आदि परिणाम के निमित्त से कार्मणवर्गणारूप पुद्‌गलस्कन्ध जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते है, उनको कर्म कहते है।

अथवा

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से आत्मप्रदेशो मे हलचल होती है तब जिस क्षेत्र मे आत्मप्रदेश है उसी क्षेत्र मे रहे हुए अनन्तानन्त कर्म योग्य पुद्‌गल जीव के साथ बन्ध को प्राप्त होते है वह कर्म है।

कर्म के आठ भेद है–

(१) **ज्ञानावरणीय कर्म**–आत्मा के ज्ञानगुण को आच्छादित करने वाला कर्म ज्ञानावरणीय (ज्ञान + आवरण) कहलाता है। जिस प्रकार आख पर कपडे की पट्‌टी बाध देने से वस्तुओ को देखने मे रूकावट पडती है उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थ–ज्ञान मे बाधा उपस्थित होती है।

पांच प्रकार के ज्ञान को आच्छादित करने के कारण ज्ञानावरणीय कर्म के पाच भेद होते है।

(२) **दर्शनावरणीय कर्म**–आत्मा की दर्शन शक्ति को ढकने वाला कर्म दर्शनावरणीय कहलाता है। जैसे द्वारपाल राजा के दर्शन

करने मे रूकावट डालता है, उसी प्रकार यह कर्म आत्मा की दर्शन शक्ति (वस्तु के सामान्य ज्ञान) को प्रकट नही होने देता। इस कर्म के नव भेद है–(१) चक्षुदर्शनावरण, (२) अचक्षुदर्शनावरण, (३) अवधि दर्शनावरण, (४) केवल दर्शनावरण, (५) निद्रा, (६) निद्रानिद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचला प्रचला और (९) स्त्यानगृद्धि।

(३) **वेदनीय कर्म**–जो अनुकूल और प्रतिकूल विषयो से उत्पन्न सुख दुख रूप से वेदन अर्थात् अनुभव किया जाय वह वेदनीय कर्म कहलाता है।

वेदनीय कर्म दो प्रकार का होता है–(१) साता वेदनीय–सुख का अनुभव कराने वाला कर्म और (२) असातावेदनीय–दुख का अनुभव कराने वाला कर्म।

(४) **मोहनीय कर्म**–जो कर्म आत्मा को मोहित करता है अर्थात् भले बुरे के विवेक से शून्य बना देता है वह मोहनीय कर्म है। इस कर्म के प्रभाव से आत्मा धर्म से विमुख होकर पाप मे प्रवृत्त हो क्रोध, मान, माया और लोभ मे समय व्यतीत करती है। इस कर्म के दो भेद है–(१) दर्शन मोहनीय–जो समकित को घात करता है और (२) चारित्र मोहनीय–जो चारित्र का घात करता है।

(५) **आयु कर्म**–जिस कर्म के रहते प्राणी जीता है तथा पूरा होने पर मरता है उसे आयु कर्म कहते है। अथवा जिस कर्म से जीव अपना आयुष्य बाधता है अर्थात् एक गति से दूसरी गति मे जाता है और नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवता की आयु प्राप्त करता है, वह आयु कर्म कहलाता है।

(६) **नाम कर्म**–जिस कर्म के प्रभाव से जीव नारक, तिर्यच, मनुष्य व देव नामो से सम्बोधित होता है और शरीर आदि के अवयव बनते है, उसे नामकर्म कहते है। इसे शुभ नाम कर्म और अशुभ नाम

कर्म के भेद द्वारा भी जाना जाता है।

(७) **गौत्र कर्म**–जिस कर्म के उदय से जीव जाति, कुल आदि की अपेक्षा से उच्च व निम्न जन्मो को धारण करता है, उसे गौत्र कर्म कहते है।

(८) **अन्तराय कर्म**–जिस कर्म के उदय मे आत्मा की दान, लाभ, भोग, उपयोग और वीर्य शक्तियो का घात होता है अर्थात् कार्यो मे विघ्न उपस्थित हो जाते है, उसे अन्तराय कर्म कहते है। इसका बधन दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य मे अन्तराय देने से होता है।

ग्यारहवें बोले गुणस्थान १४-

१ मिथ्यात्व गुणस्थान, २ सास्वादन गुण॰, ३ मिश्र गुण॰, ४ अविरति सम्यग्दृष्टि गुण॰, ५ देशविरति श्रावक गुण॰, ६ प्रमादी साधु गुण॰, ७ अप्रमादीसाधु गुण॰, ८ नियट्टिबादर गुण॰, ६ अनियट्टिबादर गुण॰, १० सूक्ष्मसम्पराय गुण॰, ११ उपशान्तमोहनीय गुण॰, १२ क्षीणमोहनीय गुण॰, १३ सयोगी केवली गुण॰, १४ अयोगी केवली गुणस्थान।

गुणस्थान किसको कहते है ? मोह कर्म के क्षय, उपशम और क्षयोपशम तथा योग (मन, वचन और काय की प्रवृत्ति) के निमित्त से सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र रूप आत्मा के गुणो की तारतम्य रूप (हीनाधिकता रूप) अवस्था विशेष को गुणस्थान कहते है।

वस्तुत जीव की क्रमश उन्नत अवस्थाओ का नाम ही गुणस्थान है। गुणस्थान मे– गुण + स्थान दो शब्द हैं, गुण का अर्थ है ज्ञान, दर्शन, चारित्र और स्थान से अभिप्राय है अवस्था, स्थिति विशेष अर्थात् कर्म के उदय, क्षयोपशम, उपशम और क्षय मे आत्मा

का स्वरूप कैसा होता है ? तथा इन ज्ञानादि गुणो की क्या स्थिति होती है ? यह अवस्था विशेष ही गुणस्थान है। ऐसे समय मे आत्मा के गुण–ज्ञानादि का तारतम्य कैसा है यह बताना गुणस्थान का कार्य है। अथवा यू कहे कि आत्मा की अशुद्धतम अवस्था से लेकर शुद्धतम दशा तक/ससार अवस्था से मुक्तावस्था तक की विकास भूमिकाए गुणस्थान है।

गुणस्थानो का सक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

(१) **मिथ्यात्व गुणस्थान**–मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जिस अवस्था मे जीव की दृष्टि (श्रद्धा या ज्ञान) मिथ्या (उल्टी) होती है उसे मिथ्यात्व गुणस्थान कहते है। जिस प्रकार पीलिए रोग से ग्रसित व्यक्ति को सफेद वस्तु भी पीली दिखाई देती है इसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव कुदेव मे देव बुद्धि, कुगुरु मे गुरु बुद्धि और कुधर्म मे धर्मबुद्धि रखता है। जीव की इसी अवस्था को मिथ्यादृष्टि या मिथ्यात्व गुणस्थान कहते है।

(२) **सास्वादन गुणस्थान**–जो जीव औपशमिक सम्यक्त्व वाला है परन्तु अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व को छोडकर मिथ्यात्व की ओर झुक रहा है, वह जीव जब तक मिथ्यात्व प्राप्त नहीं करता तब तक सास्वादन सम्यग्दृष्टि रहता है अत इस अवस्था को सास्वादन गुणस्थान कहते है।

(३) **मिश्र गुणस्थान**–मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से जब जीव की दृष्टि कुछ सम्यक् (शुद्ध) और कुछ मिथ्या (अशुद्ध) रहती है, इस अवस्था को सम्यक् मिथ्यादृष्टि अर्थात् मिश्र गुणस्थान कहते है।

(४) **अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान**–जो जीव सम्यग्दृष्टि होकर भी किसी प्रकार के व्रत को धारण नही करता अर्थात् सावद्य

(पापजनक) व्यापारो से अलग नही होता और किसी चारित्र तथा व्रत को धारण नही करता, उसे अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते है।

(५) **देशविरति श्रावक गुणस्थान**–प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से जो जीव पापजनक क्रियाओ से सर्वथा निवृत्त न होकर एक देश से (आशिक) निवृत्त होते हैं वे देशविरति या श्रावक कहलाते है। ऐसे जीवो के स्वरूप को देशविरत गुणस्थान कहते हैं।

(६) **प्रमादी साधु गुणस्थान**–पापजनक व्यापारो से सर्वथा निवृत्त सयत (साधु) भी जब तक प्रमाद का सेवन करते है तब तक प्रमत्त सयत कहलाते है और उनका स्वरूप प्रमत्त सयत गुणस्थान है।

(७) **अप्रमादी साधु गुणस्थान**–जो मुनि निद्रा, विषय, कषाय, विकथा आदि प्रमादो का सेवन नहीं करते वे अप्रमत्त सयत है और उनका स्वरूप विशेष अप्रमादी साधु गुणस्थान है। इस गुणस्थान से आत्मा उत्तरोत्तर शुद्ध होने लगता है।

(८) **नियट्टि बादर गुणस्थान**–जिस जीव के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया तथा लोभ चारो निवृत्त हो गये हो, उसके स्वरूप विशेष को नियट्टि (निवृत्ति) बादर गुणस्थान कहते है।

इस गुणस्थान से दो श्रेणिया प्रारम्भ होती है–उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी। उपशम श्रेणी वाला जीव मोहनीय की प्रकृतियो का उपशम करता हुआ ग्यारहवे गुणस्थान तक जाता है और क्षपक श्रेणी वाला जीव दसवे से सीधा १२वे गुणस्थान मे जाकर अपडिवाई (अप्रतिपाती) हो जाता है।

(९) **अनियट्टि बादर गुणस्थान**–सज्वलन क्रोध, मान और

या कषाय से जहा निवृत्ति न हुई हो ऐसी अवस्था–विशेष को नियट्टि (अनिवृत्ति) बादर गुणस्थान कहते है।

नवे गुणस्थान को प्राप्त करने वाले जीव दो प्रकार के होते -एक उपशमक और दूसरे क्षपक। जो चारित्र मोहनीय कर्म का शमन करते है वे उपशमक कहलाते है। जो चारित्र मोहनीय कर्म क्षपण (क्षय) करते है वे क्षपक कहलाते है।

(१०) **सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान**–इस गुणस्थान मे सम्पराय र्थात् लोभ कषाय के सूक्ष्म खण्डो का ही उदय रहता है अत जीव ज्वलन लोभ का उपशम या क्षय करता है।

(११) **उपशान्त मोहनीय गुणस्थान**–जिनके कषाय उपशान्त हैं, जिनको राग अर्थात् माया और लोभ का द्वेष यानी क्रोध और न का बिल्कुल उदय नहीं है और जिनको छद्म (आवरण भूत) ती कर्म लगे हुए है उसे उपशान्त मोहनीय गुणस्थान कहते है। ने उपशान्त वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान भी कहते है।

(१२) **क्षीण मोहनीय गुणस्थान**–जिस जीव ने मोहनीय र्म का सर्वथा क्षय कर दिया है किन्तु शेष छद्म (घाती कर्म) अभी द्यमान है उस स्वरूप को क्षीण मोहनीय गुणस्थान या क्षीणकषाय द्मस्थ वीतराग गुणस्थान कहते है। इसे क्षपक श्रेणी वाले जीव ही प्त करते है।

(१३) **सयोगी केवली गुणस्थान**–जिन्होने ज्ञानावरण, र्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय–चार घाती कर्मो का क्षय करके वलज्ञान प्राप्त किया है उनको सयोगी केवली कहते है और उनके रूप–विशेष को सयोगी केवली गुणस्थान कहते है।

(१४) **अयोगी केवली गुणस्थान**–जो केवली भगवान योगो रहित है वे अयोगी केवली कहे जाते हैं। उनके स्वरूप विशेष को

अयोगी केवली गुणस्थान कहते है।

इसके पश्चात् अयोगी केवली शुक्लध्यान को प्राप्त करते हैं और मध्यम रीति से पाच ह्रस्व अक्षरो के उच्चारण मे जितना समय लगता है उतने समय मे 'शैलेशीकरण' करते हैं। कर्मो के क्षय होते ही केवली भगवान् एक समय मे ऋजु गति से ऊपर की ओर सिद्धि क्षेत्र मे चले जाते है।

बारहवें बोले पांच इन्द्रियों के तेईस विषय और २४० विकार-

श्रोत्रेन्द्रिय के ३ विषय–१ जीवशब्द, २ अजीवशब्द, ३ मिश्रशब्द। चक्षुइन्द्रिय के ५ विषय–१ काला, २ नीला, ३ लाल, ४ पीला, ५ सफेद। घ्राणेन्द्रिय के २ विषय–१ सुरभिगन्ध, २ दुरभिगन्ध। रसनेन्द्रिय के ५ विषय–१ तीखा, २ कडवा, ३ कषैला, ४ खट्टा, ५ मीठा। स्पर्शनेन्द्रिय के ८ विषय–१ कर्कश (खरदरा), २ मृदु (सुहाला), ३ लघु (हल्का), ४ गुरु (भारी), ५ शीत (ठण्डा), ६ उष्ण (गर्म), ७ रुक्ष (लूखा), ८ स्निग्ध (चोपडिया)।

इन्द्रियो के विषय किनको कहते है ? जिनको आत्मा इन्द्रियो द्वारा जानती है उन्हे इन्द्रियो के विषय कहते है।

प्रश्नोत्तर–शरीर मे खरदरा क्या ? पैर की एडी। सुहाला क्या ? गले का तालवा। भारी क्या ? हड्डियॉ। हल्का क्या ? केश। ठण्डा क्या ? कान की लोल। उष्ण क्या ? कलेजा। स्निग्ध क्या ? आख की कीकी। रुक्ष क्या ? जीभ। इन्द्रियो के २४० विकार होते है, वे इस प्रकार है–श्रोत्रेन्द्रिय के १२ विकार–१ जीवशब्द, २ अजीवशब्द, ३ मिश्रशब्द, ये तीन शुभ और ३ अशुभ, इन ६ ऊपर राग और ६ ऊपर द्वेष, इस प्रकार १२। चक्षुइन्द्रिय के पांच विषयों के ६० विकार–५ सचित्त, ५ अचित्त, ५ मिश्र ये १५ शुभ और

१५ अशुभ इन ३० ऊपर राग और ३० ऊपर द्वेष, इस प्रकार ६०। घ्राणेन्द्रिय के दो विषयो के १२ विकार–२ सचित्त, २ अचित्त, २ मिश्र, इन ६ ऊपर राग और ६ ऊपर द्वेष, इस प्रकार १२। रसनेन्द्रिय के पाच विषयो के ६० विकार–५ सचित्त, ५ अचित्त, ५ मिश्र ये १५ शुभ और १५ अशुभ इन ३० ऊपर राग और ३० ऊपर द्वेष, इस प्रकार ६०। स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषयो के ६६ विकार–८ सचित्त, ८ अचित्त, ८ मिश्र ये २४ शुभ और २४ अशुभ, इन ४८ ऊपर राग और ४८ ऊपर द्वेष, इस प्रकार ६६। कुल २४० विकार।

जीव शब्द–देहधारी/ प्राणधारी चेतन का शब्द–जीवशब्द। जैसे मनुष्य, पशु–पक्षी आदि के शब्द है।

अजीव शब्द–जड/अचेतन पदार्थ के टकराने से उत्पन्न होने वाली ध्वनि अजीव शब्द है।

मिश्र शब्द–प्राणधारी चेतन और जड वाद्य दोनो से उत्पन्न ध्वनि मिश्र शब्द है। जैसे बासुरी।

तालिका यन्त्र

इन्द्रिय	श्रोत्र	चक्षु	घ्राण	रसना	स्पर्शन	कुल
विषय	३	५	२	५	८	२३
विकार	१२	६०	१२	६०	९६	२४०

तेरहवें बोले मिथ्यात्व के १० भेद-

१ जीव को अजीव श्रद्धे तो मिथ्यात्व, २ अजीव को जीव श्रद्धे तो मि॰, ३ धर्म को अधर्म श्रद्धे तो मि॰, ४ अधर्म को धर्म श्रद्धे तो मि॰, ५ साधु को असाधु श्रद्धे तो मि॰, ६ असाधु को साधु श्रद्धे तो मि॰, ७ ससार के मार्ग को मोक्ष का मार्ग श्रद्धे तो मि॰, ८ मोक्ष के मार्ग को ससार का मार्ग श्रद्धे तो मि॰, ९ आठ कर्मो से मुक्त को अमुक्त श्रद्धे तो मि॰, १० आठ कर्मो से अमुक्त को मुक्त श्रद्धे तो मिथ्यात्व।

मिथ्यात्व किसको कहते है ? कुदेव, कुधर्म और कुशास्त्र पर श्रद्धा (विश्वास) करना उसको मिथ्यात्व कहते है।

अर्थात् सत्य वस्तु को असत्य और असत्य को सत्य जानना मिथ्यात्व है। अथवा–जो वस्तु जिस रूप मे है उसे उसी रूप मे न मानकर विपरीत रूप मे मानना मिथ्यात्व है। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, शास्त्र पर अश्रद्धान, कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, कुशास्त्र पर श्रद्धान/विश्वास/ आस्था करना मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के भेद निम्नानुसार है–

१ **जीव**–जो सदाकाल जीवित रहता है, जिसमे सुख–दुख का सवेदन होता है, चेतना एवं प्राणमय है, वह जीव है। अर्थात् पर्याय, प्राण, योग, उपयोग आदि के धारक एकेन्द्रिय आदि जीव को अजीव समझना मिथ्या दृष्टिकोण है।

२ **अजीव**–अचेतन, जड, प्राण रहित, संवेदन रहित अजीव जैसे सूखे काष्ठ, निर्जीव पाषाण, वस्त्र आदि को जीव का आकार बनाकर उसे जीव कहना मिथ्यात्व है।

३ **धर्म**–अहिसा, सयम, तप रूप लक्षणो को धारण न करना/ आत्मशुद्धि की ओर न बढना मिथ्यात्व है–अर्थात् श्री भगवान के समझाये गये सत्य, दया आदि मूल धर्म को नहीं मानना।

४ **अधर्म**–जीवन को मलिन करने वाले, पतित करने वाले, हिसा व कर्मबन्ध के कार्य जैसे यज्ञ, अगारकर्म आदि को धर्म समझना।

५ **साधु**–पाच महाव्रतो (अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) के पालक, स्व–पर जीवन साधक, गुण सयुक्त ज्ञानी, तपस्वी, क्षमावान, वैरागी, जीतेन्द्रिय, त्याग–तप से युक्त साधक को मत, पक्ष से या द्वेष वुद्धि से असाधु मानना मिथ्यात्व है।

६ **असाधु**—प्राणातिपात आदि अठारह पाप स्थानक का सेवन करने/ कराने/अनुमोदन करने वाले, अत्यागी, रसलोलुप, जिन आज्ञा से विरूद्ध वर्तने वाले साधुवेष धारक को साधु मानना मिथ्यात्व है।

७ **संसार-मार्ग**—पाच इन्द्रिय विषय सेवन, हिसा आदि क्रूर कर्म, सप्त कुव्यसन सेवन, काम क्रीडा करना, स्नान आदि ससार मे परिभ्रमण का मार्ग है, उसे मोक्ष का हेतु समझना मिथ्यात्व है।

८ **मोक्ष-मार्ग**—ज्ञान—दर्शन—चारित्र और तप मोक्ष के मार्ग है, अर्थात् अहिसा आदि पापो का परिहार, तप त्याग, सवर, कर्मक्षय के लिए निर्जरा, धर्मानुष्ठान करना आदि को ससार का मार्ग मानना मिथ्या है। इसी प्रकार दया, दान, शील, सतोष, क्षमा इत्यादि को कर्म बध का, ससार मे रूलाने का मार्ग मानना मिथ्यात्व है।

९ **मुक्त**—जन्म-मरण, भव भ्रमण, अष्ट कर्म बन्धन से सर्वथा रहित, ज्ञानादि आत्मगुणो मे रमण करने वाले एव अनन्त आनन्द मे लीन मुक्त जीव को अमुक्त बताना मिथ्यात्व है।

१० **अमुक्त**—विषय-कषायो मे आबद्ध, जन्म—मरण, अज्ञान—मोह से युक्त बद्ध, बन्धे हुए, अमुक्त को मुक्त मानना मिथ्यात्व है।

इनके अतिरिक्त भी पन्द्रह प्रकार के मिथ्यात्व माने गये है, जो इस प्रकार है—

१ **अभिग्रह मिथ्यात्व**—अपने ध्यान मे आये नही अर्थात् अपने मन मे जो मान्यता बना ली उसी को मानना।

२ **अनाभिग्रह मिथ्यात्व**—अपना हठ तो नहीं रखे परन्तु सत्य असत्य का निर्णय नहीं कर सके, एक ही नही माने।

३ **अभिनिवेश मिथ्यात्व**—अपनी ली हुई टेक को नहीं छोडे।

४ **संशय मिथ्यात्व**—अपना चित डावाडोल रखे, संशय करे तथा निश्चय नही कर सके। धर्म अहिसा, लक्षण है कि नहीं, इत्यादि मति दुविधा को सशय मिथ्यात्व कहते है।

५ **अनाभोग मिथ्यात्व**—शून्य उपयोग होने से अर्थात् अज्ञानपन से मिथ्या धारणा बना लेना।

६ **लौकिक मिथ्यात्व**—लोक व्याप्त धारणाओ को सत्य मानना। इसके ४ भेद है—

(१) देवगत मिथ्यात्व—भैरू—भवानी आदि को देव मानना।

(२) गुरुगत मिथ्यात्व—गगागुरु इत्यादि को गुरु मानना।

(३) धर्मगत मिथ्यात्व—नदी स्नान, सागर स्नान आदि मे धर्म मानना।

(४) पर्वगत मिथ्यात्व—होली, दशहरा आदि त्यौहारो को पर्व मनाना।

७ **लोकोत्तर मिथ्यात्व**—आत्मोन्नति से जुडे हुए उत्तम दिनो को सुख का कारण मानना लोकोत्तर मिथ्यात्व है।

इसके चार भेद हैं—देव, गुरु धर्म व पर्व अर्थात् देव—अट्ठारह दोष रहित, गुरु—निर्ग्रन्थ, धर्म—दया मूलक, पर्व—जिन कल्याणक दिन या ज्ञान, दर्शन, चारित्र साधना के दिन—पर्युषण को लोक सुखकारी मानना।

८ **कुप्रावचन मिथ्यात्व**—शास्त्रो द्वारा असम्मत देव/पर्व को लौकिक कार्य मानना और इनसे संबंधित साहित्य/शास्त्र पर श्रद्धा रखना या इन्हे मानना।

इसके चार भेद हैं—अर्थात् देव—हरिहर ब्रह्मादि, गुरु—बाबा,

जोगी आदि, धर्म–स्नान, जप, यज्ञ आदि एव पर्व को लौकिक कार्य मानना।

९ **विपरीत मिथ्यात्व**–श्री भगवन्त द्वारा कथित अर्थ से विपरीत श्रद्धा करना या सात निन्हव के अतिरिक्त की प्ररूपना करना विपरीत मिथ्यात्व है।

१० **रूपी पदार्थ को अरूपी मानना** जैसे–वायुकायादि सूक्ष्म होने से दृष्टिगोचर न हो उनको अरूपी मानना।

११ **अरूपी को रूपी समझे सो मिथ्यात्व** जैसे ध र्मास्तिकायादि जो अरूपी है उनको रूपी मान लेना।

१२ **अविनय मिथ्यात्व**–जिनेश्वर तथा गुरु के वचनो का उल्लघन करना, गुणवन्त, ज्ञानवन्त, तपस्वी, वैरागी आदि उत्तम पुरुषो के प्रति कृतघ्न रहना, उनके चारित्र आदि मे छिद्र देखते रहना, निन्दा अविनय करना आदि अविनय मिथ्यात्व है।

१३ **आशातना मिथ्यात्व**–गुरु की ३३ आशातना का करना आशातना मिथ्यात्व है।

१४ **अक्रिया मिथ्यात्व**–जैसे प्रतिक्रमण आदि क्रियाओ को न मानना अक्रिया मिथ्यात्व है।

१५ **अज्ञान मिथ्यात्व**–सत्य असत्य का विवेक न होने से, सासारिक कार्य, कर्मो का बधन रूप जैसा का तैसा रहने से और सत्य ज्ञान के अभाव से अज्ञान को स्थापित करना–जैसे पशुवध को धर्म समझना आदि अज्ञान मिथ्यात्व है।

चौदहवें बोले-छोटी नव तत्त्व के ११५ भेद-

१ जीव तत्त्व, २ अजीव तत्त्व, ३ पुण्य तत्त्व, ४ पाप तत्त्व, ५ आश्रव तत्त्व, ६ संवर तत्त्व, ७ निर्जरा तत्त्व, ८ बन्ध तत्त्व, ९ मोक्ष तत्त्व। जीव के १४, अजीव के १४, पुण्य के ९, पाप के १८, आश्रव के २०,

संवर के २०, निर्जरा के १२, बन्ध के ४, मोक्ष के ४ भेद=कुल ११५।

जीव तत्त्व किसे कहते है ? जीव चेतनालक्षण उपयोग लक्षण वाला, सुखदु ख का वेदक, पर्याप्ति प्राण का धर्ता, आठ कर्मो का कर्ता और भोक्ता, सदाकाल शाश्वता रहे, कभी नष्ट न होवे और असख्याता प्रदेशी हो, उसको जीव तत्त्व कहते है तथा यह जीव ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य, इन चार भाव प्राणो से गये काल मे जीया, वर्त्तमान काल मे जीता है और आगामी काल मे इन्हीं चार भाव प्राणो से जीवेगा। इसलिये इसको जीव कहते है। जीव के मुख्य दो भेद होते है–ससारी और सिद्ध। संसारी जीव किसे कहते है ? जो कर्म सहित है उसे ससारी कहते है। सिद्ध किसे कहते है ? जो ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म रहित है उसे सिद्ध कहते है।

इन नव तत्त्वो के जानने के फल का निर्देश करते हुए बतलाया गया है–

जीवाइ नव पयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्त।
भावेण सद्दहतो, अयाणमाणे वि सम्मत्त।।

अर्थात्–जो जीवादि नव तत्त्वो को जानता है उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। जीवादि तत्वो को नही जानने वाला भी यदि भाव पूर्वक उन पर श्रद्धा रखता है तो उसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

(नव तत्त्व गाथा ३६)

नव तत्त्वो मे जीव, अजीव और पुण्य ये तीन ज्ञेय है अर्थात् जानने योग्य है। संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तीन उपादेय (ग्रहण करने योग्य) है। पाप, आश्रव और बन्ध ये तीन हेय (छोडने योग्य) है।

१-जीव के १४ भेद

सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेद–अपर्याप्त और पर्याप्त।
वादर एकेन्द्रिय के " " " " "

बेइन्द्रिय के " " " " "
तेइन्द्रिय के " " " " "
चउरिन्द्रिय के " " " " "
असन्नी पचेन्द्रिय के " " " " "
सन्नी पचेन्द्रिय के " " " " "

सूक्ष्म जीव किसको कहते है ?

सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जो एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म शरीरधारी है, उनको ही सूक्ष्म जीव कहते है। वे जीव सारे लोक मे व्याप्त है, काटने से कटते नही, बढाने से बढे नही, जलाने से जलते नहीं, पानी मे डूबते नही और अपनी आयु पूर्ण होने पर ही उनकी मृत्यु होती है। उनको कोई किसी भी शस्त्र से नही मार सकता। वे जीव किसी को कोई कष्ट नही पहुचाते। केवलज्ञानी ही उनको देख सकते है अन्य किसी भी छद्मस्थ को नजर नही आते है। पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि पाचो एकेन्द्रिय मे होते है।

बादर एकेन्द्रिय किसे कहते है ?

बादर नाम कर्म के उदय से जो स्थूल शरीरधारी जीव है उन्हे बादर एकेन्द्रिय कहते है। वे सारे लोक मे व्याप्त नही है। वे आख से या यत्र की सहायता से देखे जा सकते है। वे काटने से कट जाते है, जलाने से जल जाते हैं पानी मे डूब जाते हैं, केवलज्ञानी और छद्मस्थ के नजर आते है और एक के दो भाग हो जाते है। उन पर शस्त्र का प्रभाव पडता है तथा वे दूसरो के लिए अनुकूल या प्रतिकूल होते है। पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि पाचो स्थावरो मे वे होते है। सचित मिट्‌टी, पानी, लीलोतरी आदि के रूप मे जिनका शरीर हम प्रतिदिन देखते है, वे बादर एकेन्द्रिय होते है।

पर्याप्त और अपर्याप्त किसे कहते हैं ?

जिस जीव की जितनी पर्याप्तियां कही गई है, उन सभी पर्याप्तियों को पूर्ण कर लेने पर वह जीव पर्याप्त कहलाता हैं। जैसे एकेन्द्रिय जीव के आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास ये चार पर्याप्तियां होती है। जब जीव इनको पूरी कर लेता है, तब वह पर्याप्त कहलाता है। जब तक चारो पर्याप्तियां प्राप्त नही कर लेता तब तक अपर्याप्त है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय आदि जीवो को भी समझा जा सकता है।

संज्ञी और असंज्ञी किसे कहते हैं ?

जो मन वाले हैं, उनको सज्ञी कहते हैं और जिनके मन नहीं है, उनको असज्ञी कहते है। मन पंचेन्द्रिय के ही होता है इसलिए जिन पचेन्द्रिय जीवो के मन है, वे सज्ञी कहलाते है। जैसे गर्भज मनुष्य और तिर्यच, औपपातिक देव या नारकीय जीव। जिन पचेन्द्रिय जीवो के मन नही है, वे असज्ञी कहलाते हैं जैसे समूर्च्छिम मनुष्यादि के जीव।

२. अजीव के १४ भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद–स्कन्ध, देश और प्रदेश।
अधर्मास्तिकाय के तीन भेद–स्कन्ध, देश और प्रदेश।
आकाशास्तिकाय के तीन भेद–स्कन्ध, देश और प्रदेश।
ये नव और दसवा काल। ये दस भेद अरूपी अजीव के होते है।
रूपी पुद्गल के चार भेद–१ स्कन्ध, २ देश, ३ प्रदेश और ४ परमाणुपुद्गल। ये चौदह भेद अजीव के होते है।

अजीव किसको कहते है ? अजीव–चेतना रहित, सुखदु ख को वेदे नहीं, पर्याप्ति, प्राग, योग, उपयोग और आठ कर्मो से रहित और जड स्वरूप हो उसे अजीव कहते है।

धर्मास्तिकाय किसे कहते है ?

जीव और पुद्‌गल जिस द्रव्य की सहायता से हलन चलन करते है, उस द्रव्य का नाम धर्मास्तिकाय है। यह द्रव्य चलने की प्रेरणा नही देता है, परन्तु चलायमान पदार्थ का सहायक होता है। जैसे मछली को चलने मे पानी सहायक होता है।

अधर्मास्तिकाय किसे कहते है ?

जो द्रव्य जीव और पुद्‌गल को स्थिर होने मे सहायता देता है, उसका नाम अधर्मास्तिकाय है। यह द्रव्य किसी को स्थिर होने के लिए विवश नही करता, परन्तु स्थिर होते हुए पदार्थ का सहायक हो जाता है। जैसे थके हुए पथिक को ठहरने मे छाया उपकारक होती है।

आकाशास्तिकाय किसे कहते हैं ?

जो सब द्रव्यो को अवकाश = जगह देता है उसे आकाशास्तिकाय कहते हैं। जैसे दूध चीनी को और पानी नमक को स्थान देता है। इसके दो भेद होते है–लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश मे सभी द्रव्य रहे हुए है जबकि अलोकाकाश मे आकाश के अतिरिक्त और कोई द्रव्य नहीं है। इसका कारण यह है कि हलन चलन मे सहायता करने वाला धर्मास्तिकाय द्रव्य लोकाकाश तक ही सीमित है।

काल द्रव्य किसे कहते है ?

नये–पुराने, छोटे–बडे आदि की पहचान जिस द्रव्य से होती है, उसे काल द्रव्य कहते है। समय, आवलिका, मुहूर्त, प्रहर, दिन–रात, मास, वर्ष आदि व्यवहार इसी द्रव्य के आधार से किये जाते है।

काल को अस्तिकाय क्यों नहीं कहा जाता है ?

जिस द्रव्य के भेद हो सकते है, उसे ही अस्तिकाय कहते है। लेकिन काल स्वतत्र द्रव्य नही है, वह पर पदार्थ सापेक्ष है, जैसे सूर्य के चलने से, घडी का काटा घूमने से काल का ज्ञान होता है। यह अप्रदेशी है इसलिए अस्तिकाय नहीं है।

पुद्गलास्तिकाय किसे कहते हैं ?

ससार मे हम जिन अजीव पदार्थो को देखते है, वे सब पुद्गल हैं। सडना–गलना, बिखरना और पुन एकत्रित होना, ये सब क्रियाए पुद्गलो मे होती है। जब तक जीव के साथ इसका सम्बन्ध बना रहता है, तब तक इनके साथ सचित् का व्यवहार होता है। जीव के सम्बन्ध छूटते ही वे अपने असली स्वरूप मे अचित्त रह जाते हैं, जैसे निर्जीव शरीर। यह द्रव्य ससारी जीवो की प्रवृत्तियो मे विशेष सहायक होता है।

प्रदेश किसे कहते हैं ?

प्रदेश वह सूक्ष्म भाग कहलाता है, जिसके दूसरे भाग की कल्पना भी न की जा सकती हो और स्कध के साथ अवयव रूप से मिला हुआ है।

अनेक प्रदेश मिलकर देश कहलाते हैं और अनेक देशो का समूह स्कन्ध कहलाता है। देश भी स्कन्ध के साथ मिले हुए ही होते है, स्वतत्र नहीं रहते।

परमाणु किसे कहते है ?

अति सूक्ष्म भाग को, जिसका फिर हिस्सा न किया जा सके, परमाणु कहते है। परमाणु और प्रदेश मे यही अन्तर है कि प्रदेश अपने देश और स्कन्ध से मिले हुए होते हैं जबकि परमाणु उससे पृथक् होता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और

आकाशास्तिकाय के प्रदेश पृथक् नही हो सकते है। अत इन द्रव्यो मे परमाणु नही कहा गया है। रूपी अजीव द्रव्य मे ही परमाणु होते है। इनको हम आख से या किसी यत्र के सहारे से भी नही देख सकते है।

३ पुण्य के ६ भेद

१ अन्न पुण्य—अन्न देने से पुण्य होता है। २ पान पुण्य—पानी देने से पुण्य होता है। ३ लयन पुण्य—जगह, स्थान वगैरह देने से पुण्य होता है। ४ शयन पुण्य—शय्या, पाट, पाटला, बाजोट वगैरह देने से पुण्य होता है। ५ वत्थ (वस्त्र) पुण्य—वस्त्र (कपडा) देने से पुण्य होता है। ६ मन पुण्य—शुभ मन रखने से—दानरूप, शीलरूप, तपरूप, भावरूप और दयारूप आदि शुभ मन रखने से पुण्य होता है। ७ वचन पुण्य—मुख से शुभ वचन बोलने से तथा अच्छा वचन निकालने से पुण्य होता है। ८ काय पुण्य— काया द्वारा दया पालने से, काया द्वारा सेवा चाकरी, विनय वैयावच्च करने से पुण्य होता है। ९ नमस्कार पुण्य—अधिक गुणवान् को नमस्कार करने से पुण्य होता है।

पुण्य किसको कहते है ? जो आत्मा को पवित्र करे तथा जिसकी प्रकृति शुभ, जो बॉधते हुए कठिन, भोगते हुए सुखकारी दु ख पूर्वक बाधा जावे, सुख पूर्वक भोगा जावे, शुभ योग से बाधे, शुभ उज्ज्वल पुद्गलो का बध पडे, पुण्य धर्म का सहायक तथा पथ्यरूप है। जिसका फल मीठा हो उसे पुण्य कहते है। अर्थात् जिसमे सुख की प्राप्ति हो, ऐसे शुभ परिणाम और क्रियाए पुण्य कहलाती है।

उपरोक्त नव प्रकार से पुण्य बधता है और ४२ प्रकार से भोगा जाता है। पुण्य कर्म भोगने की ४२ प्रकृतिया इस प्रकार है—आयुष्य कर्म

की ३ (देवता का आयुष्य, मनुष्य का आयुष्य और तिर्यच का आयुष्य), वेदनीय की एक १ (सातावेदनीय), नामकर्म की ३७ (१ मनुष्य गति, २ मनुष्य की आनुपूर्वी, ३ देव गति, ४ देव आनुपूर्वी, ५ पञ्चेन्द्रिय जाति, ६ औदारिक शरीर, ७ वैक्रिय शरीर, ८ आहारक शरीर, ९ तैजस शरीर, १० कार्मण शरीर, ११ औदारिक का अगोपाग, १२ वैक्रिय का अंगोपाग, १३ आहारक का अंगोपाग, १४ वज्रऋषभनाराचसहनन, १५ समचतुरस्रसस्थान, १६ शुभ वर्ण, १७ शुभ गन्ध, १८ शुभ रस, १९ शुभ स्पर्श, २० अगुरु लघुनाम, २१ पराघात नाम, २२ उच्छ्वास नाम, २३ आतप नाम, २४ अद्योत नाम, २५ शुभ विहायोगति नाम, २६ निर्माण नाम, २७ तीर्थकर नाम, २८ त्रस नाम, २९ बादर नाम, ३० पर्याप्ति नाम, ३१ प्रत्येक नाम, ३२ स्थिर नाम, ३३ शुभ नाम, ३४ सौभाग्य नाम, ३५ सुस्वर नाम, ३६ आदेय नाम, ३७ यश कीर्ति नाम)। गोत्र कर्म की १ (उच्च गोत्र) कुल ४२।

पुण्य की तीन अवस्थाए है। उपादेय, ज्ञेय और हेय। प्रथम अवस्था मे जब तक मनुष्य भव, आर्य क्षेत्र आदि पुण्य प्रकृतिया नहीं प्राप्त हुई है तक तक के लिये पुण्य उपादेय है, क्योकि इन प्रकृतियो के बिना चारित्र की प्राप्ति नहीं होती। चारित्र प्राप्त हो जाने के बाद अर्थात् साधकावस्था मे पुण्य ज्ञेय है अर्थात् उस समय न तो मनुष्यत्वादि पुण्य प्रकृतियो को प्राप्त करने की इच्छा की जाती है और न छोडने की क्योकि वे मोक्ष तक पहुँचाने मे सहायक है। चारित्र की पूर्णता होने पर अर्थात् चौदहवे गुणस्थान मे वे हेय हो जाती है, क्योकि शरीर को छोडे बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। सब कर्म प्रकृतियो का सर्वथा क्षय होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है जैसे समुद्र को पार करने के लिये समुद्र के किनारे पर खडे व्यक्ति के लिये नौका

उपादेय है। नौका मे बैठे हुए व्यक्ति के लिये ज्ञेय है अर्थात् न हेय और न उपादेय। दूसरे किनारे पर पहुचने के बाद नौका हेय है, क्योकि नौका को छोडे बिना दूसरे किनारे पर स्थित अभीष्ट नगर की प्राप्ति नहीं होती। इसी तरह ससार रूपी समुद्र से पार होने के लिये पुण्य रुपी नौका की आवश्यकता है, किन्तु चौदहवे गुणस्थान मे पहुॅचने के पश्चात् मोक्ष रूपी नगर की प्राप्ति के समय पुण्य हेय हो जाता है। +

(नव तत्त्व के आधार से)

४. पाप के १८ भेद

१ प्राणातिपात–जीवो की हिंसा करना। २ मृषावाद–असत्य–झूठ बोलना। ३ अदत्तादान–बिना दी हुई वस्तु को लेना (चोरी करना)। ४ मैथुन–कुशील सेवन करना। ५ परिग्रह–द्रव्य आदि रखना, ममता रखना। ६ क्रोध–खुद तपना दूसरो को तपाना और क्रोध करना। ७ मान–अहकार (घमड) करना। ८ माया–कपटाई–ठगाई करना। ६ लोभ–तृष्णा बढाना, मूर्च्छा (गृद्धिपना) रखना। १० राग–मनोज्ञ वस्तु पर स्नेह, रखना, प्रीति करना। ११ द्वेष–अमनोज्ञ वस्तु पर द्वेष करना। १२ कलह–क्लेश करना। १३ अभ्याख्यान–झूठा कलक (आल) लगाना। १४ पैशुन्य–दूसरे की चाडी–चुगली करना। १५ परपरिवाद–दूसरे का अवर्णवाद (निन्दा) बोलना। १६ रति अरति–पॉच इन्द्रियो के तेईस विषयो मे से मनोज्ञ वस्तु पर प्रसन्न होना, अमनोज्ञ वस्तु पर नाराज होना, १७ मायामृषावाद–कपट सहित झूठ बोलना, कपटाई मे कपटाई करना। १८ मिथ्यादर्शन शल्य–कुदेव, कुगुरु और कुधर्म पर श्रद्धा रखना।

+ पुण्य तत्त्व नैगम नय की दृष्टि से उपादेय है, व्यवहार से ज्ञेय है और निश्चय नय की दृष्टि से हेय है।

पाप किसको कहते है ? जो आत्मा को मलीन करे तथा जो बांधते सुखकारी, भोगते दुखकारी, अशुभ योग से बन्धे, सुख पूर्वक बांधा जाय, दु:ख पूर्वक भोगा जाय। पाप अशुभ प्रकृति रूप है, जिसका फल कडवा, जो प्राणी को मैला करे उसे पाप कहते है।

पाप १८ प्रकार से बांधा जाता है, ८२ प्रकार से भोगा जाता है।

पाप कर्म भोगने की प्रकृतिया इस प्रकार है–ज्ञानावरणीय की ५ (१ मतिज्ञानावरणीय, २ श्रुतज्ञानावरणीय, ३ अवधिज्ञानावरणीय, ४ मन पयर्य ज्ञानावरणीय, ५ केवलज्ञानावरणीय)। दर्शनावरणीय की ६–(१ निद्रा, २ निद्रानिद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानगृद्धि, ६ चक्षुदर्शनावरणीय, ७ अचक्षुदर्शनावरणीय, ८ अवधिदर्शनावरणीय, ९ केवलदर्शनावरणीय)। वेदनीय की १ (असातावेदनीय). मोहनीय की २६ (मिथ्यात्व मोहनीय, अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ। अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ। प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध मान माया लोभ। सज्वलन क्रोध मान माया लोभ। नव नोकषाय–हास्य, रति, अरति, शोक, भय, दुगुच्छा (जुगुप्सा), स्त्रीवेद पुरुषवेद, नपुसंकवेद) १ आयुष्य की (नारकी का आयुष्य), ३४ नाम कर्म की (१ नरक गति, २ तिर्यञ्चगति, ३ एकेन्द्रियपन, ४ बेइन्द्रियपन ५ तेइन्द्रियपन, ६ चउरिन्द्रियपन, ७ ऋषभनाराच सघयण, ८ नाराच संघयण, ९ अर्द्धनाराच सघयण, १० कीलिका सघयण, ११ छेवट्ठ (सेवार्त्त) सघयण, १२ न्यग्रोधपरिमण्डल सठाण, १३ सादि सठाण, १४ वामन सठाण, १५ कुब्ज सठाण, १६ हुण्डक सठाण, १७ अशुभ वर्ण १८ अशुभ गन्ध, १९ अशुभ रस, २० अशुभ स्पर्श, २१ नरकानुपूर्वी २२ तिर्यञ्चानुपूर्वी, २३ अशुभ विहायो गति, २४ उपघात नाम, २५ स्थावर नाम, २६ सूक्ष्म नाम, २७ अपर्याप्त नाम, २८ साधारण नाम, २९ अस्थिर नाम, ३० अशुभ नाम, ३१ दुर्भाग्य नाम, ३२ दु:स्वर नाम, ३३

अनादेय नाम, ३४ अयश कीर्ति नाम), गोत्रकर्म की १ (नीच गोत्र)। अन्तराय कर्म की ५–१ दानान्तराय, २ लाभान्तराय ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय, ५ वीर्यान्तराय। कुल ८२।

भगवती सूत्र प्रथम शतक के नवे उद्देशे मे भगवान् ने फरमाया है कि इन १८ पाप स्थानो का सेवन करने से जीव भारी होता है और नीच गति मे जाता है। इनका त्याग करने से जीव हल्का होता है और ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है।

उपरोक्त ८२ प्रकार से पाप के अशुभ फल भोगे जाते है, इन पापो को जान कर पाप के कारणो को छोडने से जीव इस भव मे और परभव मे निराबाध परम सुख प्राप्त करता है।

५. आश्रव के २० भेद

१ मिथ्यात्व–मिथ्यात्व को सेवे सो आश्रव अर्थात् कुदेव, कुगुरु, कुधर्म को मानना। २ अव्रत–पच्चक्खाण नहीं करे सो आश्रव। ३ प्रमाद–पाच प्रमाद सेवे सो आश्रव। ४ कषाय–पच्चीस कषाय सेवे सो आश्रव। ५ अशुभ योग–अशुभ योग प्रवर्तावे सो आश्रव। ६ प्राणातिपात–जीव की हिसा करे सो आश्रव। ७ मृषावाद–झूठ बोले सो आश्रव। ८ अदत्तादान– चोरी करे सो आश्रव। ९ मैथुन–कुशील सेवे सो आश्रव। १० परिग्रह–धन, कञ्चन वगैरह रखे सो आश्रव। ११ श्रोत्रेन्द्रिय–वश मे न रखे सो आश्रव। १२ चक्षुरिन्द्रिय–वश मे न रखे सो आश्रव। १३ घ्राणेन्द्रिय–वश मे न रखे सो आश्रव। १४ रसनेन्द्रिय–वश मे न रखे सो आश्रव। १५ स्पर्शनेन्द्रिय वश मे न रखे सो आश्रव। १६ मन–वश मे न रखे सो आश्रव। १७ वचन–वश मे न रखे सो आश्रव। १८ काया वश मे न रखे सो आश्रव। १९ भड उपकरण–अयतना से लेवे और अयतना से रखे सो आश्रव। २० सुई कुशाग्र मात्र अयतना से लेवे और अयतना से रखे सो आश्रव।

टिप्पणियां—मिथ्यात्व=सत्य—तथ्य का विपरीत रूप। कुदेव, कुधर्म व कुगुरु पर श्रद्धा हिसा, झूठ, चोरी आदि का त्याग न करना।

प्रमाद—मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा मे लीन रहना।

कषाय-क्रोध, मान, माया, लोभ को वश मे न करना।

आश्रव-जिसके द्वारा आत्मा मे कर्म आवे तथा जीव रूपी तालाब, कर्म रूपी पानी, पांच आश्रवद्वार (मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, अशुभ योग) रूपी नालो से पानी आवे उसको आश्रव तत्त्व कहते है। इसके सामान्य प्रकार से उपरोक्त २० भेद कहे गये है और विशेष प्रकार से इसके ४२ भेद होते है, जैसे—५ इन्द्रियो के विषय, ४ कषाय, ३ अशुभ योग, २५ क्रियाएँ, ५ अव्रत (हिसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह) ये ४२ भेद हुए। इसके ५७ भेद भी होते है, वे इस प्रकार है—५ मिथ्यात्व (आभिग्रहिक, अनाभिग्रहिक, आभिनिवेशिक, सांशयिक, अनाभोगिक) १२ अव्रत (५ इन्द्रिया पच्चक्खान करके रोके नही, छठा मन वश करे नहीं, छह काया की दया पाले नही तथा व्रत पच्चक्खान करे नही), २५ कषाय (१६ कषाय ६ नोकषाय) और १५ योग।

आश्रव तत्व किसे कहते हैं ?

जिस प्रकार तालाब मे नालों के द्वारा पानी आता है, उसी प्रकार जिन कारणो से आत्मा मे कर्म आते है (आ + श्रव) उन कारणों को जैन धर्म मे आश्रव कहा जाता है। पांच इन्द्रियो के भोग—विलास में लगे रहना, हिसा, असत्य आदि का आचरण करना, मन, वचन और शरीर को वश में नही रखना, ये सब आश्रव कहलाते हैं।

६ संवर तत्त्व के २० भेद

१ समकित सवर। २ व्रत पच्चक्खाण करे सो सवर। ३ प्रमाद नहीं करे सो सवर। ४ कषाय नहीं करे सो सवर। ५ शुभ योग प्रवर्तावे सो सवर। ६ प्राणातिपात विरमण-जीव की हिसा नही करे सो सवर। ७ मृषावाद विरमण-झूठ नही बोले सो सवर। ८ अदत्तादान विरमण-चोरी नही करे सो सवर। ९ मैथुन विरमण-कुशील नही सेवे सो सवर। १० परिग्रह विरमण-ममता नही रखे सो सवर। ११ श्रोत्रेन्द्रिय वश करे सो सवर। १२ चक्षुरिन्द्रिय वश करे सो सवर। १३ घ्राणेन्द्रिय वश करे सो सवर। १४ रसनेन्द्रिय वश करे सो सवर। १५ स्पर्शनेन्द्रिय वश करे सो सवर। १६ मन वश करे सो सवर। १७ वचन वश करे सो सवर। १८ काया वश करे सो सवर। १९ भड उपकरण यतना से लेवे यतना से रखे सो सवर। २० सुई कुशाग्र मात्र यतना से लेवे यतना से रखे सो सवर।

सवर किसको कहते है ? आश्रव को रोके उसको सवर कहते है तथा जीव रूपी तालाब, कर्म रूपी पानी, आश्रव रूपी नालो से आते हुए कर्मो को संवर रूपी पाल द्वारा रोके उसको सवर तत्त्व कहते है। सवर के दो भेद है—द्रव्य सवर और भाव सवर। आते हुए नवीन कर्मो को राकने वाले आत्मा के परिणाम को भाव सवर कहते है और कर्म पुद्गल की रूकावट को द्रव्य सवर कहते है। इसके सामान्य प्रकार से २० भेद होते है और विशेष प्रकार से ५७ भेद होते है—५ समिति, ३ गुप्ति, २२ परीषह, १० यतिधर्म, १२ भावना, ५ चारित्र, ये ५७।

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि आत्मा के कर्म मल को लगाने वाले कारणो को रोक देना सवर है। आश्रव से कर्मो का आगमन होता है तो सवर से इन्हे रोके जाते है। पाच इन्द्रियो को

वश मे रखना, अहिसा, सत्य आदि का आचरण करना, मन, वचन और शरीर को संयम मे रखना आदि सवर के ही रूप है।

टिप्पणियां/विशेषार्थ

सम्यक्त्व—देव, गुरु, धर्म पर श्रद्धा रखना, **विरति**=व्रत—प्रत्याख्यान, नियम करना। **अप्रमाद**—जागृत रहना, मद, विषय—कषाय—निद्रा और विकथा/कुकथा मे लीन न होकर अप्रमाद मे उद्यम करना, **अकषाय**=कषाय का सेवन न करना। कषाय से आत्मा मलिन होता है, जन्म—मरण रूप ससार की वृद्धि होती है, अत कषाय मे प्रवृत्ति नही करना संवर है।

शुभ योग=मन—वचन—काया की योग सज्ञा है, इनका शुभ मे प्रवर्तन, अशुभ कर्म निरोध अथवा कर्म निर्जरा/क्षय का कारण है। **विरमण**=अलग होना, विरक्ति त्याग अर्थ में है। हिसा, झूठ आदि का त्याग करना। निग्रह का अर्थ है वश मे करना, रोकना अर्थात् अशुभ से रोकना। श्रोत्र आदि इन्द्रियो को वश मे रखना।

प्राण + अतिपात= प्राणो को नष्ट करना/हिसा करना। मृषावाद= असत्य बोलना। अदत्त + आदान = बिना दी हुई वस्तु लेना, चोरी। मैथुन=अब्रह्मचर्य/कुशील सेवन। परिग्रह=धन, वस्तु का सग्रह और उस पर ममत्व भाव रखना। क्रोध=गुस्सा, आवेश मन का उष्ण आवेग। मान=अहकार। अपने को बडा मानने की वृत्ति, मन मे कठोर आवेग। माया=छल—कपट, मन का वलय आवेग। लोभ=लालच, मन का चिक्कण आवेग, वस्तु देखते ही मन लेने को फिसल जाय। राग=स्नेह, प्रीति/द्वेष—नफरत, घृणा, वैर। कलह=झगडा क्लेश। अभ्याख्यान=झूठा दोष देना, मिथ्या दोषारोपण। पैशुन्य=पिशुनता, चुगली, पीछे बुराई करना। पर—परिवाद=दूसरो की निन्दा, बुराई करना। रति=मन पसन्द वस्तु पर प्रसन्नता।

अरति=ना पसन्द वस्तु पर अप्रसन्नता, नाखुशी। माया–मृषा=छलपूर्वक झूठ बोलना। मिथ्या दर्शन–शल्य=विपरीत दृष्टिकोण का काटा=जो वस्तु जैसी है, उसे उस रूप मे न मानकर विपरीत रूप मे मानना, जैसे कुदेव को सुदेव, कुगुरु को सुगुरु, कुधर्म को सुधर्म मानना–ऐसे मिथ्या श्रद्धान मिथ्या दर्शन है तथा यह काटे की भाति चुभन पैदा करता है, फलत मिथ्या दृष्टिकोण को शल्य कहा गया है।

७ निर्जरा के १२ भेद

१ अनशन, २ ऊनोदरी, ३ भिक्षाचर्या, ४ रसपरित्याग, ५ कायक्लेश, ६ प्रतिसलीनता, ७ प्रायश्चित्त, ८ विनय, ६ वैयावच्च (वैयावृत्य), १० स्वाध्याय, ११ ध्यान, १२ व्युत्सर्ग अर्थात् कायोत्सर्ग।

निर्जरा तत्त्व किसको कहते है ? आत्मा से कर्मवर्गणा का एकदेशत दूर होना तथा जीव रूपी कपडा, कर्मरूपी मैल, ज्ञान रूपी पानी, तप सयम रूपी साजी साबुन से धोकर मैल को दूर करे उसको निर्जरा तत्त्व कहते है।

१ अनशन–चार प्रकार के या तीन प्रकार के आहार का त्याग करना। २ ऊनोदरी (अवमौदर्य)–भोजन की अधिक रूचि होने पर भी कम भोजन करना। ३ भिक्षाचर्या–शुद्ध आहार आदि का लेना। ४ रस परित्याग–विगयादिक का त्याग करना। ५ कायक्लेश–वीर आसन आदि करना। ६ प्रतिसलीनता (इन्द्रिय, कषाय, योगो को रोकना स्त्री पशु नपुसक रहित स्थान मे रहना)। ७ प्रायश्चित्त–जो आलोचना के योग्य हो उसकी आलोचना करके आत्मा को शुद्ध करना। ८ विनय–गुरु आदि का भक्ति से अभ्युत्थानादि द्वारा आदर सत्कार करना। ६ वैयावृत्य–आचार्यादि की दस प्रकार से सेवा करना। १० स्वाध्याय–शास्त्र की वाचना पृच्छना आदि करना। ११ ध्यान–मन को एकाग्र करना। १२ व्युत्सर्ग–काया के व्यापार का त्याग करना और काया को ध्यान मे स्थिर करना। इसीलिए इसे कायोत्सर्ग भी कहते हैं।

(१) अनशन–अशन, पान, खादिम और स्वादिम, इन चार प्रकार के आहार का अथवा पान (पानी) के सिवाय तीन प्रकार का मर्यादित समय के लिए अथवा जीवन पर्यन्त त्याग करना अनशन तप हैं। अनशन तप के दो भेद–१ इतरिय (इत्वरिक) अनशन और २ आवकहिय (यावत्कथित) अनशन। इत्वरिक अनशन थोडे काल का होता है और यावत्कथित अनशन जीवन पर्यन्त का होता है।

१ इत्वरिक अनशन के छह भेद–१ श्रेणी तप, २ प्रतर तप, ३ धन तप, ४ वर्गतप, ५ वर्ग वर्ग तप और ६ प्रकीर्णक तप।

(१) श्रेणी तप– उपवास के क्रम से छह माह तक किया जाने वाला श्रेणी तप कहलाता है। यह चौदह प्रकार है–उपवास, बेला, तेला, चोला, पचोला, छह, सात, अर्द्धमास, दो मास, तीन मास, चार मास, पांच मास, छह मास।*

इस तप मे जघन्य नवकारसी और उत्कृष्ट छह माह तक का तप किया जाता है। कुल बाईस माह सत्ताईस दिन लगते है।

(२) प्रतर तप–श्रेणी को श्रेणी से गुणा करना प्रतर है। इसमे उपवास, बेला, तेला, चोला अर्थात् चार तक की श्रेणी है। चार को चार से गुणा करने पर सोलह होते हैं। इसमे कुल ५६ दिन लगते हैं।

प्रतर तप मे चार लड होती है और सोलह कोठे भरे जाते है, जैसे–

१	२	३	४
२	३	४	१
३	४	१	२
४	१	२	३

* भगवान ऋषभदेव के शासन मे बारह मास, मध्य के बाईस तीर्थकरो के शासन मे आठ मास और अन्तिम तीर्थकर भगवान महावीर के शासन मे छह मास का उत्कृष्ट इत्वरिक अनशन माना गया है। (प्रवचन सारोद्धार)

(३) धन तप–श्रेणी को प्रतर से गुणा करना धन है। अर्थात् घन युक्त तप धन तप है। सोलह उपवास, सोलह बेला, सोलह तेला और सोलह चोला करते है। कुल चौसठ कोठे भरे जाते है।

(४) वर्ग तप–धन को धन से गुणा करना वर्ग है अर्थात् वर्गयुक्त तप वर्ग तप है। चौसठ को चौसठ से गुणा करने से ४०६६ की सख्या आती है।

(५) वर्ग वर्ग तप–वर्ग से वर्ग को गुणा करना वर्ग वर्ग है। ४०६६ को ४०६६ से गुणा करने पर १६७७७२१६ की सख्या होती है।

(६) प्रकीर्णक तप–श्रेणी आदि की रचना न कर यथा शक्ति फुटकर तप करना प्रकीर्णक तप है। नवकारसी से लेकर ऊची से ऊची तपस्या का प्रकीर्णक तप मे समावेश हो जाता है। इसके दस भेद है–१ नवकारसी, २ पौरसी ३ दो पौरसी, ४ एकासन, ५ एकलठाण, ६ निवी, ७ आयम्बिल, ८ उपवास, ६ अभिग्रह, १० चरम प्रत्याख्यान।

प्रकीर्णक तप चौदह प्रकार के बताये गये है–१ एकावली, २ रत्नावली, ३ कनकावली, ४ मुक्तावली, ५ लघु सर्वतोभद्र तप, ६ महासर्वतोभद्र तप, ७ भद्रोत्तर प्रतिमा, ८ लघु सिह निष्क्रीडित, ६ महासिह निष्क्रीडित, १० यव मध्य प्रतिमा, ११ वज्र मध्य प्रतिमा, १२ गुण रत्न सवत्सर तप, १३ कर्म चूर तप, १४ आयम्बिल वर्धमान तप। (देखिये नव तत्त्व विस्तार)

यावत्कथिक अनशन के ३ भेद होते है–१ पादपोपगमन, २ भक्त प्रत्याख्यान, ३ इगित मरण। अन्य शब्दो मे यह सथारा कहलाता है।

पादपोपगमन–इस सथारे मे चारो आहार का त्याग करते है। पादप का अर्थ वृक्ष होता है। जैसे कटे हुए वृक्ष की डाल और

वृक्ष जैसे गिरते है वैसे ही पडे रहते हैं, हिलते डुलते नहीं। उसी तरह बैठे या सोते रहते है, हाथ–पैर नही हिलाते, आख तक नही टमकारते। यह सथारा सप्रतिकर्म नही है, इसलिए इसमे वैयावच्च भी नही कराते। यह सथारा वज्र ऋषभ नाराच सहनन वाले ही करते है। यह दो प्रकार का होता है। सिहा, व्याघ्र, अग्नि आदि का उपद्रव होने पर जो सथारा किया जाता है उसे व्याघातिम कहते है और बिना किसी उपद्रव के अभाव मे स्वेच्छापूर्वक किया जाने वाला संथारा निर्व्याघातिम कहलाता है।

इसके पाच भेद है–१ शहर, ग्राम आदि बस्ती मे किया जाय, २ शहर, ग्राम आदि बस्ती के बाहर किया जाय, ३ कारण उत्पन्न होने पर किया जाय, ४ बिना कारण किया जाय, ५ नियम पूर्वक प्रतिकर्म रहित किया जाये जैसे वृक्ष की डाल टूट पडे।

भक्त प्रत्याख्यान–यावज्जीवन तीन या चार आहार का त्याग कर सथारा करना। यह प्रतिकर्म (वैयावृत्य) सहित है अर्थात् इसमे वैयावृत्य करते कराते है, कारण होने पर विहार भी कर सकते है।

इसके छह भेद है, १ शहर, ग्राम के अन्दर करना, २ शहर–ग्राम के बाहर करना, ३ कारण उत्पन्न होने पर करना, ४ बिना कारण करना, ५ नियम से प्रतिकर्म रहित करना, ६ प्रतिकर्म सहित करना, उठना–बैठना, हिलना–डुलना।

इंगित मरण–इस सथारे मे यावज्जीवन चारो आहार का त्याग करते है। दिशा की मर्यादा कर निश्चित स्थान मे रहते है। हिलने डुलने आदि शरीर की चेष्टाओ का आगार रखा जाता है। यह संथारा भी सप्रतिकर्म है यानी इसमे वैयावच्च करते है, पर कराते नही है। स्थान की मर्यादा होने से एक स्थान से दूसरे स्थान

मे नही जाते।

इस सथारे के सात भेद हैं–१ शहर–ग्राम के अन्दर करना, २ शहर–ग्राम के बाहर करना, ३ कारण उत्पन्न होने पर करना, ४ बिना कारण के करना, ५ नियम पूर्वक प्रतिकर्म रहित करना, ६ प्रतिकर्म सहित करना, उठना–बैठना, हिलना–डुलना, ७ स्थान (धरती) की मर्यादा करना।

चार प्रकार के आहार निम्नानुसार है–

अशन–जिससे भूख शान्त हो, जैसे दाल, भात, रोटी, विगय आदि।

पान–जिसमे प्यास शान्त हो, जैसे जल, धोवन आदि।

खादिम–जिससे भूख और प्यास दोनो शान्त हो जैसे–दूध, छाछ, मेवा, मिष्ठान्न आदि।

स्वादिम–जिससे भूख और प्यास की शान्ति न हो किन्तु मुह साफ करने के लिए जो भोजन के बाद खाये जाये–जैसे पान, इलायची, सुपारी, लौग, चूर्ण, खटाई आदि।

(२) ऊनोदरी के दो भेद–१ द्रव्य ऊनोदरी और २ भाव ऊनोदरी। द्रव्य ऊनोदरी के दो भेद–१ आहार–पानी की ऊनोदरी, २ भड उपकरण व वस्त्र की ऊनोदरी।

पुरुष, स्त्री और नपुसक का पूर्ण आहार क्रमश ३२, २८ और २४ कवल का माना गया है। इसमे एक कवल का आहार किया जाय और ३१ कवल का त्याग करे वह उत्कृष्ट ऊनोदरी कहलाता है। आठ कवल का आहार किया जाय और चौबीस कवल का त्याग किया जाय उसे अल्प आहार ऊनोदरी, बारह कवल का आहार किया जाय उसे डेढ भाग का आहार व अढाई भाग की ऊनोदरी, सोलह कवल का आहार करने पर अर्द्ध ऊनोदरी, २४ कवल का

योग्य) द्रव्य मे से निकाल कर अन्यत्र रखे हुए आहार की गवेषणा करना। अथवा दाता द्वारा निन्दित आहार की गवेषणा करना, १३ उवणीअ अवणीअ चरए (उपनीतापनीत चरक) किसी के लिये किसी के द्वारा लाये हुए पकवान आदि मे से दूसरी जगह रखे हुए आहार की गवेषणा करना। अथवा उपरोक्त उपनीत और अपनीत दोनो प्रकार के आहार की गवेषणा करना। अथवा गुण विशेष से प्रशसित और दूसरे गुण की अपेक्षा निदित आहार की भिक्षाचर्या करना जैसे यह जल शीतल है पर स्वाद मे खारा है, १४ अवणीअ उवणीअ चरए (अपनीतोपनीत चरक) उपरोक्त अपनीत और उपनीत दोनो प्रकार के आहर की गवेषणा करना। अथवा दाता द्वारा एक गुण की अपेक्षा निदित और दूसरे गुण की अपेक्षा प्रशसित आहार की गवेषणा करना। जैसे यह पानी खारा है पर शीतल है, १५ ससट्ठचरए (ससृष्ट चरक)—खरडे हुए हाथ आदि से दिये जाने वाले आहार की गवेषणा करना, १६ असंसट्ठ चरए (असंसृष्ट चरक)—बिना खरडे हुए हाथ आदि से दिये जाने वाले आहार की गवेषणा करना, १७ तज्जाय ससट्ठ चरए (तज्जात ससृष्ट चरक)—देय पदार्थ अथवा उस जैसे अन्य पदार्थ से भरे हुए हाथ आदि से दिये जाने वाले आहार की गवेषणा करना, १८ अण्णाय चरए (अज्ञात चरक)—अपना अथवा अपने स्वजन सम्बन्धी का परिचय न देकर भिक्षाचर्या करना अथवा अज्ञात कुल से आहार की गवेषणा करना, १६ मोण चरए (मौन चरक)—मौन रहकर भिक्षाचर्या करना, २० दिट्ठलाभिए (दृष्ट लाभिक)— दृष्ट (देखे हुए) आहार की भिक्षा लेना। अथवा पहले—पहले दिखाई देने वाले दाता से ही भिक्षा ग्रहण करना, २१ अदिट्ठ लाभिए (अदृष्ट लाभिक)—अदृष्ट (बिना देखे हुए) आहार की गवेषणा करना अथवा पहले नही देखे हुए और साधु का आना सुनकर कमरे मे से या अन्य स्थान से आये हुए दाता से भिक्षा ग्रहण करना, २२ पुट्ठलाभिए (पृष्टलाभिक)—हे साधो। आपको क्या दिया जाय ? इस प्रकार प्रश्न

पूछे जाने पर भिक्षा ग्रहण करना, २३ अपुट्ठ लाभिए (अपृष्ट लाभिक) बिना प्रश्न पूछे दाता आहार देवे तो उससे भिक्षा लेना, २४ भिक्ख लाभिए (भिक्षा लाभिक)–रूखे सूखे तुच्छ आहार की गवेषणा करना अथवा तिरस्कार पूर्वक अवहेलना करते हुए थोडा आहार देवे तो लेना, २५ अभिक्ख लाभिए (अभिक्षा लाभिक)–सरस अच्छे आहार की गवेषणा करना अथवा आदरपूर्वक प्रशसा करते हुए बहुत आहार देवे तो लेना, २६ अण्ण गिलायए (अन्न ग्लायक) जो भोजन के बिना ग्लानि पाता है वह अन्न ग्लायक है। यह अभिग्रह विशेष से प्रात काल ही रात्रि का अन्न यानी बासी ठडे भोजन की गोचरी कर उसका आहार करना है, २७ ओवणिहिए (औपनिहितिक)–नजदीक घरो से भिक्षा करना अथवा दाता के पास रखा हुआ आहार ग्रहण करना, २८ परिमिय पिण्ड वाइए (परिमित पिण्डपातिक)–प्रमाण सहित गिनकर आहार लेना, २६ सुद्धेसणिए (शुद्धैषणिक) शुद्ध शकादि दोष रहित आहार की गवेषणा करना अथवा शुद्ध बिना मसाला का कूर आदि आहार ग्रहण करना, ३० सखादत्तिए (सख्यादत्तिक) धार टूटे बिना एक बार मे जितना आहार या पानी पात्र मे गिरे उसे दत्ति (दात) कहते है। दात की सख्या का नियम करके आहार लेना।

क्षेत्र भिक्षाचरी–क्षेत्र का निश्चय कर आहार पानी लेना। इसके ८ भेद है–१ पेडी का आकार हो, २ अर्द्ध पेडी का आकार, ३ गौ मूत्र का आकार, ४ पतगिया का आकार, ५ शख का आकार, ६ सिघाडे का आकार, ७ जाता हुआ, ८ आता हुआ।

काल भिक्षाचरी–इसके चार भेद है–१ प्रथम प्रहर मे गोचरी करके आहार पानी लाना, प्रथम प्रहर मे करना और तीन प्रहर का त्याग करना, २ प्रथम प्रहर का त्याग करना, दूसरे प्रहर मे लाना, दूसरे प्रहर मे ही करना और तीसरे व चौथे प्रहर का त्याग करना, ३ प्रथम व दूसरे प्रहर का त्याग करना, तीसरे प्रहर मे आहार लाना, तीसरे प्रहर मे ही करना तथा चौथे प्रहर का त्याग करना, ४ प्रथम,

द्वितीय व तृतीय प्रहर का त्याग करना, चौथे प्रहर मे आहार लाना और चौथे प्रहर मे ही करना।

भाव भिक्षाचरी के १५ भेद—भावो मे अभिग्रह धारण करना। बाल, युवा, वृद्ध उम्र की स्त्री (३), बाल, युवा, वृद्ध, आयु का पुरुष, (३), ७ अमुक वर्ण, ८ अमुक सस्थान, ९ अमुक वस्त्र, १० बैठा हो, ११ खडा हो, १२ सिर खुला हो, १३ सिर ढका हो, १४ आभूषण सहित हो, १५ आभूषण रहित हो।

(४) रस परित्याग—जीभ के स्वाद को छोडना, विकार पैदा करने वाले घी, दूध, दही आदि विगयो का त्याग करना, स्निग्ध, गरिष्ठ भोजन न करना, तली हुई, चटपटी मिर्च मसालो वाली स्वादिष्ट वस्तुओ का त्याग करना रस परित्याग है।

रस परित्याग के ९ भेद१ + णिव्वियतिए (निर्विकृतिक) घी, तेल, दूध, दही, गुड, चीनी आदि विगयो से रहित आहार करना, २ पणीअ रस परिच्चाए (प्रणीत रस परित्याग) जिसमे घी, दूध आदि झर रहा हो ऐसे स्निग्ध गरिष्ठ आहार का त्याग करना, ३ आयबिलए—विगय की मसाला रहित भात, उडद आदि अचित्त पानी के साथ खाकर आयबिल तप करना, ४ आयामसित्थ भोई—ओसामण मे पडे हुए चॉवल आदि के दानो का आहार करना, ५ अरसाहारे—हीग आदि का बघार नही दिया हुआ नीरस आहार करना, ६ विरसाहारे—पुराने हो जाने से जिनका रस चला गया है यानी सत्त्व नही रहा है ऐसे धान्य भात आदि का आहार करना, ७ अताहारे—जघन्य निम्न कोटि के चना दाल आदि का आहार करना, ८ पताहारे—उपरोक्त चना, दाल आदि भी जो खाने के बाद बचे हो उनका आहार करना

+ अभी जो नीवी तप करते है, जिसमे छाछ के साथ लूखी रोटी खाते है इसका भी णिव्वियातिए मे ही समावेश होता है।

अथवा बासी–ठडा आहार करना, ६ *लूहाहारे–रुक्ष–रूखे सूखे पदार्थों का आहार करना।

(५) **कायक्लेश**–कर्मो की निर्जरा के लिये उग्र वीरासन आदि आसन करना, शरीर की शोभा शुश्रूषा का त्याग करना–इस प्रकार शरीर को कष्ट पहुँचाना कायक्लेश तप है।

कायक्लेश तप के तेरह प्रकार है–१ ठाणट्ठितिए (स्थानस्थितिक) कायोत्सर्ग करके खडा रहना २ ठाणाइए (स्थानातिग) अतिशय रूप से कायोत्सर्ग करना। कायोत्सर्ग किये बिना खडा रहना भी इसका अर्थ होता है ऐसी धारणा है, ३ उक्कुडु आसणिए (उत्कटुकासनिक)– उकडु आसन से बैठना, ४ पडिमट्ठाई (प्रतिमास्थायी)–एक मासिकी, दोमासिकी आदि पडिमा अगीकार करके विचरना, ५ वीरासणिए (वीरासनिक)–वीरासन लगाकर बैठना। जमीन पर पैर रख कर सिहासन पर बैठे हुए पुरुष के नीचे से सिहासन हटा लेने पर जो अवस्था रहती है वह वीरासन कहलाता है, ६ नेसज्जिए (नैषद्यिक)–निषद्या यानी पलाथी (आलखी पालकी) मार कर बैठना, ७ दडायए (दडायतिक) डडे की तरह लम्बे लेट कर पडे रहना, ८ लउडसाई (लगण्डशायी) टेढी लकडी की तरह पैर की दोनो एडी और सिर भूमि पर लगा कर शरीर का शेष भाग ऊपर उठाकर सोना अथवा केवल पीठ ही को भूमि पर लगाकर और शरीर का शेष भाग ऊपर उठाकर सोना ९ आयावए (आतापक)– शीतकाल मे शीत मे और उष्ण काल मे धूप मे, आसन विशेष से बैठकर, सोकर अथवा खडे रहकर ठड और धूप से शरीर को सतप्त करना, १० अवाउडए (अप्रावृतक)–शीतकाल मे बिना वस्त्र के खुले

* कहीं–कहीं 'लूहाहारे' के बदले 'तुच्छाहार' मिलता है। तुच्छाहार का अर्थ हे तुच्छ यानी अल्प और असार वस्तुओ का आहार करना।

मैदान मे कायोत्सर्ग करना, ११ अकडूअए (अकडूयक)– शरीर को न खुजलाना, १२ अणिट्ठू हुए (अनिष्ठीवक)–थूक नही थूकना, १३ सव्वगाय परिकम्म विभूस विप्पमुक्के (सर्वगात्र परिकर्म विभूषा विप्रमुक्त)–शरीर के सभी अगो का सस्कार न करना, शरीर की विभूषा न करना।

(६) **पडिसंलीणया (प्रतिसंलीनता)**–प्रतिसलीनता का अर्थ है गोपन करना। इन्द्रिय, कषाय और योगो की अशुभ प्रवृत्तियो से आत्म गुणो की रक्षा करना प्रतिसलीनता तप है।

प्रति सलीनता के चार भेद–१ इन्द्रिय प्रति संलीनता, २ कषाय प्रति सलीनता, ३ जोग प्रति सलीनता और ४ विविक्त शयनासन सेवनक्त, जिनके क्रमश ५, ४ ,३ और एक इस प्रकार तेरह भेद है।

प्रतिसलीनता तप के १३ भेद है–१–५–इन्द्रिय प्रतिसलीनता श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय–इन पॉचो इन्द्रियो को अपने अपने विषयो (शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श) की ओर जाने से रोकना और प्राप्त पॉचो इन्द्रियो के अनुकूल विषयो मे राग और प्रतिकूल विषयो मे द्वेष न करना, ६–६ कषाय प्रतिसलीनता–क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायो को उत्पन्न न होने देना और उत्पन्न हो जाने पर इन्हे निष्फल बनाना, १०–१२ योग प्रतिसलीनता के ३ भेद–मन प्रतिसलीनता–मन की अकुशल–अशुभ प्रवृत्ति पर निग्रह करना और कुशल यानी शुभ प्रवृत्तियो को मन मे प्रवर्ताना, वचन प्रतिसलीनता–अशुभ वचन पर नियत्रण करना और शुभ–निर्दोष सत्य वचन कहना, मौन रखना, काया प्रतिसलीनता–हाथ पैर की चेष्टाओ को वश मे करना यानी हाथ पैर से बुरी हिसाकारी हरकते न करना, कछुए की तरह

इन्द्रियो का गोपन करना और शरीर के सभी अगो पर काबू रखना, १३ विवित्त सयणासण सेवणया (विविक्त शयनासन सेवनता) स्त्री, पशु, नपुसक रहित मकान, आराम, उद्यान, सभा, प्याऊ आदि स्थानो मे प्रासुक एषणीय पाट, पाटला, शय्या, सस्तारक ग्रहण करके रहना।

(७) **प्रायश्चित्त**—धारण किये हुए व्रतो मे प्रमाद से लगने वाले दोषो की जिससे शुद्धि हो उसे प्रायश्चित्त कहते है।

प्रायश्चित्त के ५० भेद—दस प्रकार का प्रायश्चित्त, दस प्रकार की प्रतिसेवना, प्रायश्चित्त देने वाले के दस गुण, प्रायश्चित्त लेने वाले के दस गुण, प्रायश्चित्त—(आलोचना) के दस दोष।

दस प्रकार का प्रायश्चित्त १ आलोयणा (आलोचना) व्रतो मे (मूल गुण उत्तरगुण मे) प्रमाद वश लगे हुए दोषो को गुरु के समक्ष शुद्ध भाव से स्पष्ट शब्दो मे प्रकट करना २ पडिक्कमण (प्रतिक्रमण) प्रतिक्रमण का अर्थ है दोषो से पीछे हटना यानी व्रतो मे लगे हुए दोषो के लिये पश्चाताप करते हुए 'मिच्छामि दुक्कड' देना और पुन दोष न लगे इसके लिये सावधान रहना, ३ तदुभय आलोचना और प्रतिक्रमण दोनो करना, ४ विवेगारिहे (विवेक) अशुद्ध अकल्पनीय आहारादि आ जाय और पीछे से उसका सदोष होना मालूम हो जाय तो उसे परठ देना, ५ विउस्सग्गे (व्युत्सर्ग) शरीर और वचन के व्यापारो का त्याग कर कायोत्सर्ग करना, ६ तप—अनशनादि बाह्य तप करना, ७ छेद—दोष के अनुसार दीक्षा पर्याय का छेद करना यानी दीक्षा पर्याय मे कमी कर देना, ८ मूल—पुन व्रत आरोपण करना यानी नई दीक्षा देना, ९ अणवट्ठाप्पारिह (अनवस्थाप्यार्ह) दोष विशेष का सेवन करने पर महाव्रतो से अलग कर दोष शुद्धि के लिये तप विशेष कराना और तप द्वारा दोष की शुद्धि हो जाने पर पुन

दीक्षा देना, १० पाराचियारिहे (पाराचिकार्ह) गच्छ से बाहर निकाल कर साधु वेष का त्याग कर गृहस्थ का वेष पहिना कर, छ महीने से लगा कर बारह वर्ष तक अलग रखना और उत्कृष्ट तप कराना बाद मे नई दीक्षा देकर गच्छ मे शामिल करना। वज्र ऋषभ नाराच सहनन वाले चौदह पूर्वधारी के रहते नवॉ दसवॉ प्रायश्चित्त दिया जाता है।

दस प्रकार की प्रति सेवणा १ दर्प–अहकार वश सयम की विराधना करना, वल्गन (उछलना) आदि आगम निषिद्ध क्रियाओ का सेवन कर प्राणातिपातादि दोष लगाना, २ प्रमाद–पाच प्रमाद–मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा के वश हो कर सयम की विराधना करना, काम विकार परिहास विकथा आदि के वश होकर प्राणातिपात आदि दोषो का सेवन करना। शास्त्र विहित क्रिया मे प्रयत्न न करना, ३ अनाभोग–उपयोग नही होने से अज्ञान वश सयम मे दोष लगाना। यानी अनुपयोग या विस्मरण हो जाने से प्राणातिपातादि दोष लगाना, ४ आतुर–भूख प्यास से पीडित होकर अथवा रोग से व्याकुल होकर सयम मे दोष लगाना, ५ आपत्ति– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से आपत्ति आने पर सयम मे दोष लगाना। द्रव्य आपत्ति–प्रासुक निर्दोष आहार पानी का न मिलना। क्षेत्र आपत्ति–मार्ग मे अटवी या भयकर जगल मे रहना पडे वहॉ आने वाली आपत्ति। काल आपत्ति–दुर्भिक्ष–दुष्काल पडने पर उत्पन्न आपत्ति। भाव आपत्ति–बीमार या अस्वस्थ होने से उत्पन्न आपत्ति, ६ शकित–अनेषणीय आहार होने की शका होने पर भी उसे लेकर प्राणातिपात आदि दोषो का सेवन करना, ७ सहसाकार–सहसा बिना सोचे समझे यकायक कार्य कर प्राणातिपात आदि दोषो का सेवन करना, पडिलेहणा किये बिना ही कोई काम कर लेना ८ भय – राजा चोर

आदि के डर से प्राणातिपात आदि दोष लगाना, ६ प्रद्वेष– द्वेष या ईर्ष्या कषाय के वश सयम मे दोष लगाना, १० विमर्श–शिष्य आदि की जॉच (परीक्षा) के लिये सयम मे दोष लगाना।

प्रायश्चित्त देने वाले के १०–गुण–१ आचारवन्त–ज्ञानादि पॉच आचार वाला, २ अवहारवत (अवधारणवान्) प्रायश्चित्त का ज्ञाता या आधारवान, आलोचना करने वाले के सभी अतिचार दोषो को मन मे ही रखने वाला, ३ व्यवहारवान्–आगम, सूत्र, आज्ञा,

धारणा और जीत इन पॉच व्यवहारो का ज्ञाता, ४ अपव्रीडक–लज्जावश दोषो को छिपाने वाले शिष्य की लज्जा दूर कराने वाला, ५ प्रकुर्वक–आलोचना किये गये दोष को प्रायश्चित्त देकर शुद्धि कराने मे समर्थ, ६ अपरिस्रावी–आलोचित दोषो को दूसरे के सामने प्रकट नहीं करने वाला, ७ निर्यापक–एक साथ पूरा प्रायश्चित्त लेने गे असमर्थ साधु को खण्ड खण्ड मे प्रायश्चित्त देकर निर्वाह करने वाला, ८ अपायदर्शी–आलोचना नहीं करने से परलोक का भय तथा दूसरे दोष बताने वाला, ६ प्रियधर्मा–जिसको धर्म प्रिय लगता हो, १० दृढधर्मा–जो धर्म मे दृढ हो।

प्रायश्चित्त लेने वाले के दस गुण–१ जाति सम्पन्न–उत्तम जाति वाला, मातृ पक्ष को जाति कहते है, २ कुल सम्पन्न–उत्तम कुल वाला, पितृ पक्ष को कुल कहते है, ३ विनय सम्पन्न–विनय वाला, ४ ज्ञान सम्पन्न–ज्ञान वाला, ५ दर्शन सम्पन्न–शुद्ध श्रद्धा वाला, ६ चारित्र सम्पन्न–उत्तम चारित्र पालने वाला, ७ क्षान्त–क्षमा धारण करने वाला, ८ दान्त–इन्द्रियो को दमन करने वाला जितेन्द्रिय, ६ अमायी–माया कपट रहित अर्थात सरल परिणामो वाला, १० अपच्छाणुतावी (अपश्चात्तापी)–आलोचना करने के बाद पश्चात्ताप न करने वाला।

प्रायश्चित्त के दस दोष–१ आकपइत्ता–कॉपते–कॉपते आलोचना करे, २ अणुमाणइता–अनुमान लगाकर आलोचना करे, यानी पहले पूछे कि अमुक दोष का क्या प्रायश्चित्त है ? इस तरह प्रायश्चित्त मालूम करके फिर ठीक लगे तो आलोचना करे, ३ दिट्ठ–दोष सेवन करते किसी ने देख लिया हो तो आलोचना करे, नही देखा हो तो आलोचना नही करे, ४ बायर–बादर बडे–बडे दोष की आलोचना कर सूक्ष्म (छोटा) दोष छिपा लेवे, ५ सुहुम–सूक्ष्म छोटे–छोटे दोष की आलोचना करे, बडे दोष छिपा लेवे, ६ छण्ण–लज्जावश कोई सुन न ले इस ख्याल से धीमे–धीमे बोलकर आलोचना करे, ७ सद्दाउलग–दूसरो को सुनाने के लिये जोर–जोर से बोलकर आलोचना करे, ८ बहुजण–एक ही दोष की अनेक गीतार्थ मुनियो के पास आलोचना करे, ६ अव्वत्त–जिसे प्रायश्चित्त का ज्ञान नही है ऐसे अगीतार्थ मुनि के पास आलोचना करे, १० तस्सेवी–जिस दोष की आलोचना करनी है उसी दोष का सेवन करने वाले साधु के पास आलोचना करे।

(८) **विनय**–ज्ञान आदि सद्‌गुणो मे एव इन गुणो के धारक महापुरुषो मे बहुमान रखना उनको उचित सत्कार सम्मान देना विनय कहलाता है। विनय के सात भेद है–१ ज्ञान विनय २ दर्शन विनय ३ चारित्र विनय ४ मन विनय ५ वचन विनय ६ काय विनय ७ लोकोपचार विनय।

(१) ज्ञान विनय–ज्ञान और ज्ञानी के प्रति श्रद्धा भक्ति बहुमान रखना, विनय पूर्वक विधि के साथ ज्ञान ग्रहण करना, उसका अभ्यास करना ज्ञान विनय है। ज्ञान विनय के ५ भेद–१ मतिज्ञान विनय २ श्रुतज्ञान विनय ३ अवधि ज्ञान विनय ४ मन पर्यय ज्ञान विनय ५ केवल ज्ञान विनय।

(२) दर्शन विनय–अरिहन्त देव, पच महाव्रतधारी निर्ग्रन्थ गुरु और केवली भाषित धर्म पर श्रद्धा रखना दर्शन है। दर्शन और दर्शनवान् के प्रति बहुमान भक्ति रखना दर्शन विनय है। दर्शन विनय के दो भेद है–शुश्रूषा विनय और अनाशातना विनय। शुश्रूषा विनय के दस भेद–१ अब्भुट्ठाणे (अभ्युत्थान) गुरु महाराज एव रत्नाधिक (दीक्षा मे बडे) को आते देखकर खडे हो जाना, (२) आसणाभिग्गहे (आसनाभिग्रह)–आसन ग्रहण करने के लिये आमन्त्रित करना अथवा जहॉ बैठना चाहते हो वहा आसन ले जाना, ३ आसणप्पदाणे–उनके लिये आसन बिछाना, ४ सक्कारे (सत्कार)–उनका सत्कार करना, ५ सम्माणे–उन्हे सम्मान देना, ६ किइकम्मे (कृतिकर्म)–उनका गुणगान करना, उनकी स्तुति करना, ७ अजलिपग्गहे (अजलीप्रग्रह)–हाथ जोडकर सामने खडे रहना, ८ एतस्स अणुगच्छणया (आगच्छत अनुगमनता)–गुरु महाराज आ रहे हो तो उनके सामने जाना, ६ पज्जुवासणया (पर्युपासनता)–जब तक विराजे तब तक उनकी सेवा करना, १० गच्छतस्स पडिससाहणया (गच्छत प्रतिससाधनता)–गुरु महाराज जा रहे हो तो उनके पीछे–पीछे जाना यानी उन्हे पहुँचाने जाना।

अनाशातना विनय के ४५ भेद–अरिहन्त भगवान, अरिहन्त प्ररूपित धर्म, आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, कुल, गण, सघ, क्रियावन्त, साभोगिक, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मन पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान–इन पन्द्रह की आशातना न करना, इन पन्द्रह मे भक्ति बहुमान रखना और इन पन्द्रह के गुणों की स्तुति करना। इस तरह अनाशातना विनय के ४५ भेद हुए।

(३) चारित्र विनय के ५ भेद–१ सामायिक चारित्र विनय, २ छेदोपस्थापनीय चारित्र विनय ३ परिहार विशुद्धि चारित्र विनय

४ सूक्ष्मसपराय चारित्र विनय ५ यथाख्यात चारित्र विनय।

(४) मन विनय के दो भेद–अप्रशस्त मन विनय और प्रशस्त मन विनय। अप्रशस्त मन विनय के बारह भेद–१ सावज्जे–सावद्य, २ सकिरिए–सक्रिय (कायिकी आदि क्रिया युक्त) ३ सकक्कसे–सकर्कश (कर्कश–कठोर भाव सहित) ४ कडुए–कटुक (अनिष्ट) ५ णिट्ठुरे–निष्ठुर (मृदुता रहित) ६ फरुसे–परुष (स्नेह रहित) ७ अण्हयकरे–आश्रवकारी (अशुभ कर्म का आश्रव करने वाला) ८ छेयकरे–छेदकारी (हाथ आदि का छेदन करने वाला) ९ भेदकरे–भेदकारी (नासिका आदि का भेदन करने वाला) १० परितावणकरे–परितापनाकारी (प्राणियो को सतप्त करने वाला) ११ उद्दवणकरे–उपद्रवकारी (मरणान्तिक वेदना पहुचाने अथवा धन हरण आदि उपद्रव करने वाला) १२ भूओवघाइए–भूतोपघातक (प्राणियो की हिसा करने वाला)। उपरोक्त अप्रशस्त मन विनय के बारह भेद मन के विशेषण है अर्थात इन बारह विशेषण युक्त मन का होना अप्रशस्त मन विनय है। इन बारह बोल सहित अप्रशस्त भाव युक्त मन न प्रवर्तावे। प्रशस्त मन विनय के भी बारह भेद होते है। अप्रशस्त मन विनय के बारह बोलो से विपरीत। १ असावज्जे–निरवद्य २ अकिरिए–अक्रिय ३ अकक्कसे–अकर्कश ४ अकडुए–अकटुक (इष्ट) ५ अणिट्ठुरे– अनिष्ठुर ६ अफरूसे– अपरुष ७ अनण्हयकरे–अनाश्रवकारी, ८ अछेयकरे–अछेदकारी, ९ अभेयकरे– अभेदकारी, १० अपरितावणकरे– परितापना रहित ११ अणुद्दवणकरे– उपद्रव रहित १२ अभूओवघाइए– अभूतोपघातक–इन बारह बोल सहित प्रशस्त भाव युक्त मन प्रवर्तावे।

(५) वचन विनय के भी–अप्रशस्त वचन विनय और प्रशस्त वचन विनय–दो भेद है। दोनो के बारह बारह भेद मन विनय की

तरह समझना।

(६) काय विनय के दो भेद–अप्रशस्त काय विनय और प्रशस्त काय विनय। अप्रशस्त काय विनय के सात भेद–१ अणाउत्त गमणे–बिना उपयोग के असावधानी के साथ जाना, २ अणाउत्त ठाणे–बिना उपयोग के असावधानी से खडा होना, ३ अणाउत्त निसीदणे–बिना उपयोग के असावधानी के साथ बैठना, ४ अणाउत्त तुअट्टणे–बिना उपयोग के असावधानी से लेटना, ५ अणाउत्त उल्लघणे–बिना उपयोग के असावधानी से उल्लघन करना, ६ अणाउत्त पल्लघणे–बिना उपयोग के असावधानी से बार–बार उल्लघन करना, ७ अणाउत्त सव्विदिय काय जोग जुजणया–बिना उपयोग के असावधानी के साथ सभी इन्द्रियो और काय योग की प्रवृत्ति करना। प्रशस्तकाय विनय के सात भेद–उपयोगपूर्वक सावधानी के साथ–१ जाना २ खडा होना ३ बैठना ४ सोना ५ उल्लघन करना ६ बार–बार उल्लघन करना और ७ सभी इन्द्रियो और काययोग की प्रवृत्ति करना।

(७) लोकोपचार विनय के सात भेद–१ अब्भासवत्तिय–गुरु के समीप रहना, २ परछदाणुवत्तिय–गुरु तथा बडो के इच्छानुसार प्रवृत्ति करना, ३ कज्जहेउ–ज्ञानादि की प्राप्ति के लिये उन्हे आहारादि लाकर देना, ४ कयपडिकिरिया–गुरु तथा बडो ने मुझे ज्ञान सिखाया है इसलिये आहारादि लाकर उनकी सेवा करना, ५ अत्तगवेसणया–बीमार साधुओ की वैयावच्च करना–उनकी सार सम्भाल करना, ६ देसकालण्णुया–देश काल देखकर उचित प्रवृत्ति करना, ७ सव्वत्थेसु अपडिलोमया–सभी कार्यो मे गुरु महाराज के अनुकूल रहकर प्रवृत्ति करना। इस प्रकार विनय के ५+५५+५+२४+२४+१४+७=१३४ के भेद हुए।

(६) **वैयावच्च (वैयावृत्त्य)**–आचार्य, उपाध्याय आदि की आहार पानी आदि से तथा अन्य प्रकार से सेवा करना वैयावच्च है।

वैयावच्च के अधिकारी दस है–अत वैयावच्च के भी दस भेद बताये गये है–१ आचार्य की वैयावच्च, २ उपाध्याय की वैयावच्च, ३ नवदीक्षित की वैयावच्च, ४ ग्लान–रोगी की वैयावच्च ५ तपस्वी की वैयावच्च, ६ स्थविर (अवस्था, ज्ञान और दीक्षा पर्याय से जो स्थविर हो) की वैयावच्च, ७ स्वधर्मी साधु साध्वी की वैयावच्च, ८*कुल की वैयावच्च, ६+गण की वैयावच्च, १०–सघ की वैयावच्च।

(१०) **स्वाध्याय**–पढना, पढाना, सदेह होने पर गुरु से पूछना, पढे हुये ग्रन्थ की पुन. पुन आवृत्ति करना, मनन करना, धर्मोपदेश देना उसे स्वाध्याय कहते है।

स्वाध्याय के ५ भेद–१ वायणा (वाचना)–गुरु से सूत्र अर्थ पढना, २ पडिपुच्छणा (प्रतिपृच्छना)–शङ्का समाधान के लिए अथवा विशेष निर्णय के लिए प्रश्न करना, ३ परियट्टणा (परिवर्तना)–सीखे हुए ज्ञान को बार–बार फेरना, ४ अणुप्पेहा (अनुप्रेक्षा)–सीखे हुए सूत्रादि ज्ञान का मनन चिन्तन करना, ५ धम्मकहा (धर्मकथा)–धर्मोपदेश देना।

(११) **ध्यान**–मन को प्रयत्न विशेष से भिन्न–भिन्न विषयो के चिन्तन से हटाकर एक ही विषय पर स्थिर रखना ध्यान कहलाता है। ध्यान की यह व्याख्या छद्मस्थो के ध्यान की अपेक्षा से है। केवलज्ञानी की अपेक्षा से योगो का निरोध करना ध्यान कहलाता है।

---

*कुल–एक दीक्षाचार्य का शिष्य परिवार कुल कहलाता है।

+गण–जुदे आचार्यो के शिष्य यदि परस्पर सहाध्यायी (साथ मे अध्ययन करने वाले) होने से समान वाचना वाले हो तो उनका समुदाय गण कहलाता है। – सघ–साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप सघ है। कुलो के समुदाय को गण और गणो के समुदाय को सघ कहते हे।

ध्यान चार है—१ आर्त्तध्यान २ रौद्रध्यान ३ धर्मध्यान ४ शुक्ल ध्यान।

*आर्त्तध्यान के ४ भेद (पाया)—१ अमणुण्ण सपओगसपउत्ते—अमनोज्ञ शब्दादि विषय एव उनके साधनभूत वस्तुओ एव व्यक्तियो का सयोग होने पर उनके वियोग का निरन्तर चिन्तन करना, २ मणुण्ण सपओग सपउत्ते—मनोज्ञ शब्दादि विषय एव उनके कारण रूप धन, स्वजन, सम्बन्धी की प्राप्ति होने पर उनका वियोग न हो इस प्रकार निरन्तर चिन्तन करना ३ आयक सपओग सपउत्ते—व्याधि जनित वेदना से दु खी होकर उसकी शाति के लिये निरन्तर चिन्तन करना, ४ परिजूसिय काम भोग सपओग सपउत्ते—सेवित काम भोगो का कभी वियोग न हो इस सम्बन्ध मे निरन्तर चिन्तन करना।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण—१ कदणया (क्रन्दन)—ऊँचे स्वर से रोना चिल्लाना, २ सोअणया (शोचनता)—दैन्य—दीनपना लाना, ३ तिप्पणया (तेपनता)—टप टप ऑसू गिराना, ४ विलवणया (विलपनता)—बार-बार क्लिष्ट भाषण करना, विलाप करना।

रौद्र ध्यान के चार भेद (पाया)—१ हिंसाणुबन्धी (हिंसानुबन्धी)—निर्दयता पूर्वक जीवो के वध, बन्ध, ताडन, तर्जन आदि हिसाकारी कार्यो का निरन्तर चिन्तन करना, २ मोसाणुबन्धी (मृषानुबन्धी)—माया वश सामने वाले को ठगने, धोखा देने हेतु निरन्तर मृषावाद—झूठ एव हिसाकारी भाषा का चिन्तन करना, ३ तेणाणुबन्धी (स्तेनानुबन्धी)—तीव्र लोभ वश निरन्तर चोरी और चोरी के उपाय और साधनो का चिन्तन करना, ४ सारक्खणाणुबन्धी (सरक्षणानुबन्धी)—प्राप्त शब्दादि विषयो और उनके साधनभूत धन धान्यादि के सरक्षण का निरन्तर

---

* आर्त्तध्यान के चार भेदो मे से पहले दो भेद विषय सम्बन्धी और पिछले दो भेद रोग सम्बन्धी है ऐसी धारणा है।

चितन करना और इन्हे छीनने वाले लोगो को फँसाने, पिटवाने, जेल दिलाने आदि उनके अनिष्ट का चिन्तन करना।

रौद्रध्यान के चार लक्षण–१ उसण्णदोसे–रौद्रध्यानी हिसा, मृषावाद, अदत्तादान, परिग्रह आदि दोषो से विरत न होने से प्राय इन दोषो मे से किसी दोष का सेवन करता रहता है, २ बहुदोसे– रौद्रध्यानी सदा बहुत से हिसा, झूठ, चोरी आदि दोषो का सेवन करने वाला होता है, ३ अण्णायदोसे–कुशास्त्रो के बुरे सस्कारो के वश होकर रौद्रध्यानी हिसादि अधर्म कार्यो में धर्म मानकर प्रवृत्ति करता है, ४ आमरणंत दोसे–रौद्रध्यानी को हिसादि पाप कार्यो मे कभी पश्चात्ताप नहीं होता है, इसलिये वह मरण पर्यन्त कालिया (कालसौकरिक) कसाई की तरह हिंसादि पाप कर्म मे प्रवृत्त रहता है।

धर्मध्यान के चार भेद (पाया)–१ आणाविजए (आज्ञाविचय)– वीतराग जिनेश्वर देव की क्या आज्ञा है इसका निर्णय करना तथा जिनप्रवचन के गुणो का चिन्तन करना, २ अवायविजए (अपायविचय)– राग, द्वेष, कषाय, मिथ्यात्व, अविरति आदि दोषो से होने वाले ऐहिक और पारलौकिक अपाय–अनर्थ, हानियो का चिन्तन करना, ३ विवागविजए, (विपाकविचय)–कर्मो के विपाक फल का चिन्तन करना, संपत्ति, विपत्ति, संयोग, वियोग आदि स्वकृत शुभाशुभ कर्मो के ही फल है, बाधे हुए कर्मों के फल भोगे बिना छुटकारा नहीं है अत समभाव पूर्वक शुभाशुभ कर्मो का फल भोगना ही श्रेयस्कर है ४ संठाणविजए (संस्थान विचय)–लोक तथा द्वीप समुद्रादि के संस्थान-आकार का चिन्तन करना।

धर्मध्यान के चार लक्षण–१ आणारुइ (आज्ञारुचि)–जिनाज्ञा मे रुचि–श्रद्धा रखना, २ णिसग्गरुइ (निसर्गरुचि)–बिना किसी उपदेश के, पूर्व सस्कारो के कारण, स्वभाव से ही जिन भाषित तत्त्वो मे श्रद्धा

रखना, ३ उवएसरुइ (उपदेशरुचि)—साधु सन्तो का उपदेश सुनकर तत्त्व ज्ञान समझ कर जिन भाषित तत्त्वो मे श्रद्धा रखना, ४ सुत्तरुई (सूत्ररुचि)—सूत्र पढ कर वीतराग द्वारा प्रतिपादित तत्त्व समझना और समझ कर श्रद्धा करना।

धर्मध्यान के चार आलम्बन—१ वायणा, २ पडिपुच्छणा ३ परियट्टणा ४ धम्मकहा। इनका स्वरूप स्वाध्याय मे बताया जा चुका है।

धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षा (भावना) १ अणिच्चाणुप्पेहा (अनित्यानुप्रेक्षा)—ससार, सासारिक पदार्थ एव सम्बन्ध तथा शरीर की अनित्यता, नश्वरता का चिन्तन करना, २ असरणाणुप्पेहा (अशरणानुप्रेक्षा)—माता, पिता, बहिन, भाई, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि कोई भी इस आत्मा की जन्म जरा और मृत्यु के भय से तथा विविध व्याधि जन्य वेदना से रक्षा करने वाला नही है, इस प्रकार अशरण भाव का चिन्तन करना, ३ एगत्ताणुप्पेहा (एकत्वानुप्रेक्षा)—यह जीव अकेला ही आया है और अकेला ही जाने वाला है। माता—पिता स्वजन सम्बन्धी तथा धन सम्पत्ति आदि कोई भी अपने नही है। यह शरीर तक अपना नही है। इस प्रकार आत्मा के एक असहाय होने का चिन्तन करना, ४ ससाराणुप्पेहा (ससारानुप्रेक्षा)—यह जीव माता बनकर पुत्र बनता है, पुत्र होकर स्त्री होता है और स्त्री होकर बहिन होता है, इस प्रकार ससार की विचित्रता का एव गति आगति आदि के स्वरूप का चिन्तन करना।

शुक्ल ध्यान के चार भेद—१ पुहत्तवियक्कसवियारी (पृथक्त्व वितर्क सविचारी)—जब ध्यान करने वाला पूर्वधर हो तो पूर्वो के ज्ञान के आधार से, अन्यथा सभवित श्रुत के आधार से एक द्रव्य विषयक उत्पत्ति, स्थिति, नाश, मूर्तता, अमूर्तता आदि अनेक पर्यायो का द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक आदि नयो की अपेक्षा पृथक् पृथक् रूप से भेदप्रधान चिन्तन करना तथा उसी श्रुत के आधार से एक द्रव्य से

दूसरे द्रव्य मे, द्रव्य से पर्याय मे, एक पर्याय से दूसरी पर्याय मे, शब्द से अर्थ मे, अर्थ से शब्द मे तथा एक योग से दूसरे योग मे, सक्रमण करना पृथक्त्व वितर्क सविचारी शुक्ल ध्यान है, २ एगत्त वियक्क अवियारी (एकत्व वितर्क अविचारी)–पूर्व ज्ञान अथवा सभावित श्रुतज्ञान के आधार पर किसी एक ही द्रव्य अथवा पर्याय को लेकर उस पर अभेदप्रधान चिन्तन करना, तीन योगो मे से किसी एक ही योग पर स्थिर रहना एकत्व वितर्क अविचारी शुक्लध्यान है। इस ध्यान मे द्रव्य पर्याय शब्द अर्थ और योगो का परस्पर एक दूसरे मे संक्रमण नही होता, ३ सुहुम किरिए अप्पडिवाई (सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती)–मोक्ष जाने से पूर्व केवली भगवान मन योग, वचन योग और काया के स्थूल योग का निरोध कर लेते है तब काया की उच्छ्वास नि श्वास आदि सूक्ष्म क्रिया ही अवशिष्ट रहती है। परिणामो के बढे चढे होने से केवली भगवान इस अवस्था से नीचे नही गिरते। यह तीसरा सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती शुक्ल ध्यान है, ४ समुच्छिन्न किरिए अणियट्टी (समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्त)–शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली भगवान सभी योगो का निरोध कर लेते है। योगो के निरोध कर लेने से श्वास उच्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया भी उनके नहीं होती अर्थात् सभी क्रियाए नष्ट हो जाती है। केवली भगवान इस अवस्था से वापिस नही लौटते है। यह चौथा समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्त शुक्ल ध्यान है। इस ध्यान मे सभी आश्रव और बन्ध का निरोध होकर सभी कर्म क्षीण हो जाते है तब केवली भगवान मोक्ष को प्राप्त होते है।

शुक्ल ध्यान के पहले दो भेदो मे श्रुत ज्ञान का आधार होता है और पिछले दो भेदो मे श्रुतज्ञान का आलम्बन नही होता।

पहला शुक्ल ध्यान आठवे गुणस्थान से बारहवे गुणस्थान मे कुछ समय बाकी रहते तक होता है। बारहवे गुणस्थान के अंतिम

समय मे दूसरा शुक्ल ध्यान होता है। तेरहवे गुणस्थान के अन्त मे केवली भगवान सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती नामक तीसरा शुक्ल ध्यान ध्याते हुए क्रमश मन वचन काया के योग तथा श्वासोच्छ्वास का निरोध करते है। फिर पॉच ह्रस्व अक्षरो के उच्चारण प्रमाण स्वल्प समय मे शुक्लध्यान का चौथा भेद समुच्छिन्न क्रिया अनिवर्ति ध्याते हुए एक साथ चार अघाती कर्मो को क्षय करके मुक्त होते है।

शुक्ल ध्यान के चार लक्षण–१ विवेगे (विवेक)–शरीर से आत्मा को भिन्न समझना और आत्मा को सभी सयोगो से भिन्न समझना, २ विउस्सग्गे (व्युत्सर्ग)–नि सग यानी सग (आसक्ति) रहित होने से शरीर और उपाधि का त्याग करना, ३ अव्वहे (अव्यथ)–देवादिक का उपसर्ग होने पर भी भयभीत होकर विचलित न होना, (४) असमोहे (असमोह) देवादि की माया से मोहित न होना और सूक्ष्म पदार्थ विषयक चिन्तन मे न उलझना।

शुक्ल ध्यान के चार आलम्बन–१ खती (क्षमा) क्रोध का त्याग, २ मुत्ति (मुक्ति)–लोभ का त्याग ३ अज्जवे (आर्जव)–माया का त्याग, ४ मद्दवे (मार्दव–मान का त्याग)।

शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षा (भावना)–१ अवायाणुप्पेहा (अपायानुप्रेक्षा)–प्राणातिपात मृषावाद आदि आश्रव द्वारो से होने वाले अनर्थो का चिन्तन करना, २ असुभाणुप्पेहा (अशुभानुप्रेक्षा)–ससार के अशुभपन का चिन्तन करना, ३ अणतवत्तियाणुप्पेहा (अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा)–भव परम्परा का अन्त नही है। अनन्त काल से यह जीव ससार की विभिन्न योनियो मे निरतर भ्रमण कर रहा है। इस प्रकार भव परम्परा की अनन्तता का चिन्तन करना, ४ विपरिणामाणुप्पेहा (विपरिणामानुप्रेक्षा)–वस्तुओ का प्रतिक्षण विविध रूपो मे विपरिणमन–परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार वस्तुओ

की अशाश्वतता का चिन्तन करना।

(१२) **व्युत्सर्ग**–व्युत्सर्ग का अर्थ त्याग है।

इसका विशेष अर्थ है काया के व्यापारो का त्याग कर काया को ध्यान मे लगाना।

व्युत्सर्ग के दो भेद है–द्रव्य व्युत्सर्ग और भाव व्युत्सर्ग। द्रव्य व्युत्सर्ग के चार भेद–१ शरीर व्युत्सर्ग–शरीर का त्याग करना यानी शरीर मे ममत्व न रखना, २ गणव्युत्सर्ग–गच्छ का व्युत्सर्ग (त्याग) कर एकात मे ध्यान करना, जिन कल्प स्वीकार करना, ३ उपधि व्युत्सर्ग–उपकरण का त्याग करना, ४ भक्त पान व्युत्सर्ग–आहार पानी का त्याग करना।

भाव व्युत्सर्ग के ३ भेद–१ कषाय व्युत्सर्ग–क्रोध, मान, माया, लोभ, रूप चार कषाय का त्याग करना। २ संसार व्युत्सर्ग–नरकायु आदि के कारण रूप मिथ्यात्व आदि का त्याग करना। संसार व्युत्सर्ग के चार भेद–नैरयिक ससार व्युत्सर्ग, तिर्यच ससार व्युत्सर्ग, मनुष्य ससार व्युत्सर्ग और देव ससार व्युत्सर्ग। ३ कर्म व्युत्सर्ग– ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मो के बन्ध के कारणो का त्याग करना। आठ कर्मो के भेद से कर्म व्युत्सर्ग के भी आठ भेद होते है।

इस प्रकार निर्जरा के २०+ १५ + ३०+ ६+१३ +१३ +५०+१३४+१०+ ५+४८+७=३५४ भेद होतेहै।

८ बन्ध-

आत्मा के साथ कर्मो का बन्धन ही बन्ध है। अर्थात् आत्मा के प्रदेश और कर्म पुद्‌गलो का एक साथ मिल जाना–एक मेक हो जाना जैसे दूध और पानी का मिल जाना।

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से आत्मा के साथ कर्मवर्गणा का सम्बन्ध होकर क्षीर नीर अथवा अग्नि

लोहपिण्ड की तरह एक रूप हो जाना बध कहलाता है। बन्ध के चार भेद–१ प्रकृति बन्ध, २ स्थिति बन्ध, ३ अनुभाग बन्ध और ४ प्रदेशबध।

१ **प्रकृति बन्ध**–जीव के साथ सम्बद्ध कर्म पुद्गलो मे ज्ञान को आवरण करने, दर्शन को रोकने, सुख दु ख देने आदि जुदा–जुदा स्वभाव का होना प्रकृति बन्ध कहलाता है, २ **स्थिति बन्ध**–जीव के साथ सम्बद्ध कर्मपुद्गलो की, अमुक काल तक ज्ञान को आवरण करने आदि रूप अपने अपने स्वभाव का त्याग न करते हुए, जीव के साथ रहने की काल मर्यादा को स्थिति बन्ध कहते है, ३ **अनुभाग बन्ध**–कर्मो के फल देने की तीव्रता मन्दता आदि विशेषताओ का न्यूनाधिक होना अनुभाग बन्ध कहलाता है। अनुभाग बन्ध को अनुभाव बन्ध, अनुभव बन्ध तथा रस बन्ध भी कहते है, ४ **प्रदेश बन्ध**– जीव के साथ सम्बद्ध कार्मण वर्गणा के स्कधो का न्यूनाधिक प्रदेश वाला होना प्रदेश बन्ध कहलाता है।

चार प्रकार के बन्ध का स्वरूप मोदक (लड्डू) के दृष्टान्त से बतलाया जाता है। जैसे (१) कोई लड्डू बहुत प्रकार के द्रव्यो के सयोग से उत्पन्न हुआ, वायु, पित्त, कफ को जिस स्वरूप से नष्ट करे उसको प्रकृति (स्वभाव) बन्ध कहते है। (२) वही लड्डू पक्ष, मास, दो मास तक उसी स्व रूप मे रहे उसको स्थिति बन्ध कहते है। (३) वही लड्डू तीखा, कडवा, कषैला, खट्टा, मीठा हो उसको रस बन्ध कहते है। (४) वही लड्डू थोडा परिमाण (वजन) का बन्धा हुआ छोटा होता है और अधिक परिमाण का बन्धा हुआ बडा होता है, इसको प्रदेश बन्ध कहते है।

चार प्रकार के बन्धो के कारण क्या है ? प्रकृति बन्ध और प्रदेशबन्ध योग से होते है। स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध कषाय

से होते है। ऐसा जान कर बन्धो को तोडना चाहिए, बन्धो को तोडने से निराबाध परम सुख मिलता है +।

६. मोक्ष

मोक्ष गति चार बोलो से प्राप्त होती है–१ सम्यक् ज्ञान २ सम्यक् दर्शन, ३ सम्यक् चारित्र और ४ सम्यक् तप।

मोक्ष किसको कहते है ? आत्मा का कर्म रूपी फॉसी से सर्वथा छूट जाना तथा सम्पूर्ण आत्मा के प्रदेशो से सब कर्मो का क्षय होना, बन्धन से छूटना मोक्ष * कहलाता है।

आत्मा के सर्वथा कर्म रहित होने की ओर जन्म–मरण के बंधन से मुक्त हो जाने की स्थिति मोक्ष है। मोक्ष में न शरीर रहता है और न शरीर में काम आने वाले ससारी भोग ही। उस समय यही जीव परमात्मा बन जाता है। निर्जरा मे कर्मो का नाश अधूरा रहता है जबकि मोक्ष में कर्मो का पूर्णतया नाश हो जाता है।

सम्यक् ज्ञान–श्रद्धापूर्वक सच्चा ज्ञान।

सम्यक् दर्शन–जिनेश्वर भगवान के वचनो पर शुद्ध श्रद्धा रखना।

सम्यक् चारित्र–दर्शन और ज्ञानपूर्वक सत् आचरण।

सम्यक् तप–आत्मशुद्धि के लिए विशिष्ट अनुष्ठान।

+ विशेष विवरण के लिए देखिए जैन सिद्धान्त बोल सग्रह भाग पहला पृष्ठ २३१ से २३४ तक बोल २४७व २४८वा।

* आत्मा अमूर्त होने से इन्द्रियो द्वारा नहीं जाना जा सकता और अमूर्त होने से ही यह नित्य है। आत्मा मे रहे हुए मिथ्यात्व, अज्ञान आदि दोपो से कर्म बन्धन होता है और यही संसार परिभ्रमण का कारण कहा जाता है। (उत्त सूत्र अ १४ गा १६)

मोक्ष के नौ द्वार

१ **सत् पद प्ररूपणा**—मोक्ष गति पूर्व काल मे थी, वर्तमान काल मे है और भविष्य मे भी होगी। अर्थात् इसका अस्तित्व है, आकाश के फूल की भाति नास्ति नहीं है।

२ **द्रव्य द्वार**—सिद्ध अनन्त हैं, अभवी जीव से अनन्त गुणा अधिक है। एक वनस्पतिकाय को छोडकर दूसरे २३ दण्डक के जीवो से सिद्ध के जीव अनन्त हैं।

३ **क्षेत्र द्वार**-सिद्ध शिला प्रमाण है, जो ४५ लाख योजन लम्बी चौडी है, मध्य मे आठ योजन की मोटी है। अनुक्रम से किनारे मक्खी के पख से भी पतली है। स्वर्ण जैसी, शख, चन्द्र, रत्न, श्वेत रजत पट, मोती के हार जैसी क्षीर सागर के पानी से भी अधिक निर्मल है। उसकी परिधि १,४२,३०,२४६ योजन, १ गाउ, १७६६ धनुष, से कम छह अगुल झाझेरी है। सिद्ध के रहने का स्थान सिद्ध शिला पर एक योजन के अन्तिम गाउ का छठा भाग में है (अर्थात् ३३२ धनुष ३२ अगुल) प्रमाण क्षेत्र मे सिद्ध अनन्त भगवंत रहे हुए हैं।)

४ **स्पर्शना द्वार**—सिद्ध क्षेत्र से कुछ अधिक सिद्ध की स्पर्शना है।

५ **काल द्वार**—एक सिद्ध आश्रित आदि है, परन्तु अन्त नहीं, सर्व सिद्ध आश्रित आदि नहीं और अन्त भी नहीं है।

६ **भाग द्वार**—सर्व जीव से सिद्ध के जीव अनन्तवे भाग है, लोक के असख्यातवे भाग है।

७ **भाव द्वार**—सिद्ध मे क्षायिक भाव, केवलज्ञान, केवलदर्शन और क्षायिक सम्यक्त्व तथा पारिणामिक भाव होते हैं।

८ **आंतरा द्वार**—सिद्ध भगवान ससार मे आते नहीं, एक सिद्ध जहा अनन्त सिद्ध है और अनन्त सिद्ध वहां एक सिद्ध है अत सिद्ध मे कोई अन्तर नहीं।

६ **अल्प बहुत्व द्वार**—सबसे थोडे नपुंसक सिद्ध, उससे स्त्री सख्यात गुनी सिद्ध, उससे पुरुष संख्यात गुणा सिद्ध। एक समय मे नपुंसक १०, स्त्री २० और पुरुष १०८ सिद्ध होते है।

जो मोक्ष मे जाते हैं वे है—१ भवसिद्धिक, २ बादर, ३ त्रस, ४ संज्ञी, ५ पर्याप्त, ६ वज्र ऋषभनाराच संहनन वाला, ७ मनुष्यगति वाला, ८ क्षायिक सम्यक्त्व वाला, ६ अप्रमादी, १० अवेदी, ११ अकषाइ, १२ यथाख्यात चारित्र वाला, १३ स्नातक निर्ग्रन्थी, १४ परम शुक्ल लेशी, १५ पण्डित वीर्यवान, १६. शुक्ल ध्यानी, १७ केवल ज्ञानी, १८ केवल दर्शनी, १६. चरम शरीरी, ये १६ बोलवाला जीव मोक्ष मे जाता है। जघन्य दो हाथ की उत्कृष्ट ५०० धनुष की अवगाहना वाला जीव मोक्ष मे जाता है, जघन्य नव वर्ष का उत्कृष्ट क्रोड पूर्व का आयुष्य वाला कर्म भूमि मे हो तो मोक्ष मे जाता है। मोक्ष अर्थात् सर्व कर्म से आत्मा मुक्त हुआ अर्थात् आत्मा अरूपी भाव को प्राप्त हुआ, कर्म से अलग हुआ, एक समय मे लोक के अग्रभाग मे पहुंचा, वहा अलोक से छूते हुए रहा पर अलोक मे नहीं जा सके, क्योकि वहां धर्मास्तिकाय नही, उससे वहा स्थिर रहा, दूसरे समय मे अचल गति को प्राप्त होता है, किसी वक्त वहा से अन्यत्र नहीं जा सके, अजर, अमर, अविनाशी पद को प्राप्त होता हैं, अनन्त सुख की लहर मे सदैव निमग्न रहता है।

पन्द्रहवें बोले आत्मा आठ +१ द्रव्य आत्मा, २ कषाय आत्मा, ३ योग आत्मा, ४ उपयोग आत्मा, ५ ज्ञान आत्मा, ६ दर्शन आत्मा, ७ चारित्र आत्मा, ८ वीर्य आत्मा।

+ द्रव्य आत्मा, वीर्य आत्मा, दर्शन आत्मा, उपयोग आत्मा सब जीवो के होती है। कषाय आत्मा सकषायी जीवों को, योग आत्मा सयोगी जीवो को, ज्ञान आत्मा समदृष्टि जीवो को और चारित्र आत्मा सर्व विरति मुनिराजो को होता है। (भ श. १२, उ ४)

आत्मा किसको कहते है ? जो ज्ञानादि पर्यायो मे निरन्तर गमन करे उसको आत्मा कहते है। दृष्टान्त—जैसे आत्मा तो पेड रूप है और उसके ८ भेद है वे शाखा रूप है–।

१ **द्रव्य आत्मा**—जीव द्रव्य, तीनो काल—भूत, वर्तमान, भविष्य मे विद्यमान सत् स्वरूप, ज्ञानादि गुण, उपयोग लक्षण वाला, असख्यात प्रदेशी आत्मा द्रव्य रूप आत्मा है।

२ **कषाय आत्मा**—क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषाय पर्याय से युक्त आत्मा कषायात्मा है।

३ **योग आत्मा**—मन, वचन, काय योग से युक्त आत्मा योगात्मा है।

४ **उपयोग आत्मा**—पांच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार दर्शन रूप उपयोग से युक्त आत्मा उपयोगात्मा है।

५ **ज्ञान आत्मा**—मति आदि ज्ञान से युक्त आत्मा ज्ञानात्मा है।

६ **दर्शन आत्मा**—चक्षु दर्शन आदि दर्शन गुण युक्त आत्मा दर्शनात्मा है।

७ **चारित्रात्मा**—सामायिक चारित्र आदि रूप चारित्र युक्त आत्मा चारित्रात्मा है।

८ **वीर्यात्मा**—उत्थान, बल, वीर्य, कर्म, पुरुषाकार, पराक्रम आदि से युक्त आत्मा वीर्यात्मा है।

उक्त आत्मा के आठ भेद गुण—पर्याय की दृष्टि से हैं, क्योकि प्रत्येक द्रव्य गुण—पर्याय से युक्त होता है। पर्याय अवस्था विशेष है। यह दो प्रकार की है—स्वभाव और विभाव। कषाय आत्मा

— विशेष विवरण के लिए देखिये जैन सिद्धान्त बोल सग्रह भाग तीसरा पृष्ठ ६५ से १०२ तक बोल ५६३ का।

सकषायी जीवों के होती है, योग आत्मा सयोगी जीवो के, ज्ञान आत्मा सम्यग्दृष्टि जीवो को, चारित्र आत्मा सर्व विरत मुनियो के तथा वीर्य आत्मा अयोगी केवली सहित सर्व संसारी जीवो के होती है।

सोलहवें बोले दंडक चौबीस-

सात नारकी का एक दंडक। सात नारकी के नाम–घम्मा, वंसा, सीला, अंजणा, रिट्ठा, मघा और माघवई। इनके गोत्र–रत्नप्रभा, शर्करा प्रभा, बालुका प्रभा, पंक प्रभा, धूम प्रभा, तम प्रभा और तमस्तम प्रभा। दस भवनपतियों के दस दंडक, उनके नाम–१ असुरकुमार, २ नागकुमार, ३ सुवर्णकुमार, ४ विद्युतकुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार, ७ उदधिकुमार, ८ दिशाकुमार, ९ पवनकुमार, १० स्तनिकुमार। पाच स्थावरों के पांच दंडक। तीन विकलेन्द्रियों के तीन दडक, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का एक दंडक, मनुष्य का एक दण्डक। वाणव्यन्तर देवता का एक दंडक। ज्योतिषी देवता का एक दंडक। वैमानिक देवता का एक दंडक। कुल २४ दंडक।

दंडक किसको कहते है ? जीवादि के स्वरूप को समझाने वाली वाक्य पद्धति (वाक्य रचना) को दंडक कहते है।

वस्तुतः दण्डक वे स्थान हैं जहां जीवात्मा अपने किए हुए कर्मो का फल भोगता है या दण्ड पाता है। वे स्थान हैं–नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवता। नरक मे नारक बनकर, पृथ्वी, जल आदि स्थावर, द्वीन्द्रियादि, पंचेन्द्रिय पशु–पक्षी, जीव–जन्तु तिर्यच बनकर, मर्त्यलोक मे मनुष्य बनकर तथा देवलोक, अधोलोक, मध्यलोक मे भवनवासी, असुरादि, वाण–व्यन्तरादि, ऊर्ध्वलोक मे चन्द्र, सूर्य आदि, वैमानिक देव बनकर कर्मदण्ड/फल शुभ–अशुभ भोगते हैं।

१ (७) सात नरकों का एक दण्डक।

नरक= १ धम्मा, २. वंसा, ३ सीला, ४. अंजणा, ५, रिट्ठा, ६ मघा, ७. माघवती।

इनके गौत्र

१ रत्नप्रभा, २ शर्करा प्रभा, ३ बालुका प्रभा, ४ पंक प्रभा, ५ धूम प्रभा, ६ तम प्रभा, ७ तमतम प्रभा।

२-११ (१०) दस भवनवासी देवो के दस दण्डक।

१ असुरकुमार, २ नाग कुमार, ३ सुवर्ण कुमार, ४ विद्युत कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीप कुमार, ७ उदधिकुमार, ८ दिशाकुमार, ९ पवनकुमार, १० स्तनित कुमार।

१२-१६ (५) पांच स्थावरो के पाच दण्डक।

१ पृथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय और ५ वनस्पतिकाय।

१७-१९ (३)–तीन विकलेन्द्रियो के तीन दण्डक।

तीन विकलेन्द्रियो के नाम–द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय।

विकलेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

जिनको पांचो इन्द्रिया पूरी न मिली हो।

२० (१) तिर्यच पचेन्द्रिय का एक दण्डक।

तिर्यच पचेन्द्रिय–पशु–पक्षी, उरपरिसर्प/आदि, अजगर, सर्पादि, भुजपुट/भुज परिसर्प–नेवला, चूहा आदि जीव–जन्तु।

तिर्यच पंचेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

तिर्यच गति वाले ऐसे जीव, जिन्हे पाचो इन्द्रिया पूरी मिली हो, जैसे–मछली, पशु–पक्षी, सर्प, नेवला आदि।

२१ (१)–मनुष्य का एक दण्डक।

२२ (१)–व्यन्तर देवो का एक दण्डक।

व्यन्तर देव–१ पिशाच, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ किन्नर, ६ किपुरुष, ७ महोरग, ८ गधर्व, ९ आणपन्ने, १० पाणपन्ने, ११ ऋषि वादिक, १२ भूत वादिक, १३ क्रन्दित, १४ महाक्रन्दित, १५ कुब्माड, १६ पतगदेव।

२३ (१)–ज्योतिष्क देवो का एक दण्डक।

चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा। ये पाच चर है और पाच अचर हैं।

२४ (१)–वैमानिक देवो का एक दण्डक।

वैमानिक देव–कल्पोपन्न/कल्पवासी और कल्पातीत। कल्प का अर्थहै मर्यादा। जहां स्वामी सेवक की व्यवस्था आदि है वह कल्पवासी है। ये छब्बीस हैं। बारह कल्पवासी हैं। कल्पातीत दो प्रकार के हैं–६ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर वैमानिक।

कल्पवासी (१२)

१ सौधर्म कल्प, २. ईशान कल्प, ३ सानत् कुमार देवलोक, ४ महेन्द्र देवलोक, ५ ब्रह्म देवलोक, ६ लांतक देवलोक, ७ महाशुक्र देवलोक, ८. सहस्रार देवलोक, ९. आनत देवलोक, १० प्राणत देवलोक, ११ आरण देवलोक और १२ अच्युत देवलोक।

ग्रैवेयक (९)

१ भद्र, २. सुभद्र, ३ सुजात, ४ सुमनस, ५ सुदर्शन, ६. प्रियदर्शन, ७ आमोह, ८ सुप्रतिबद्ध, ९ यशोधर।

अनुत्तर वैमानिक (५)

१ विजय, २. वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित, ५ सर्वार्थसिद्ध।

सतरहवें बोले लेश्या छः-

१ कृष्ण लेश्या, २ नील लेश्या ३ कापोत लेश्या, ४ तेजो लेश्या, ५ पद्म लेश्या, ६ शुक्ललेश्या।

लेश्या किसको कहते है ? जिसके द्वारा आत्मा कर्मो से लिप्त होता है तथा जो योगो की प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है तथा मन के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते है।

(१) **कृष्ण लेश्या का लक्षण**—पॉच आश्रवो मे प्रवृत्ति करने वाला, तीन गुप्तियो से अगुप्त (आत्मा का गोपन न करने वाला), छ काया मे अविरत अर्थात् छ काया की विराधना करने वाला, तीव्र भावो से आरम्भादि करने वाला, निर्दयता के परिणाम वाला, निर्दयी, नृशस—क्रूर, अजितेन्द्रिय—इन्द्रियो को वश मे न रखने वाला इन उपरोक्त परिणामो से युक्त जीव कृष्ण लेश्या के परिणाम वाला होता है।

(२) **नील लेश्या का लक्षण**—ईर्षालु, कदाग्रही, तपस्या न करनेवाला, अविद्या वाला, मायावी, निर्लज्ज, गृद्धि रखने वाला, द्वेष करने वाला, मूर्ख, प्रमादी, रस लोलुपी, सुखकी गवेषणा करने वाला, आरम्भ से निवृत्त न होने वाला और क्षुद्र, तुच्छ तथा साहसिक, बिना विचारे काम करने वाला इन उपरोक्त परिणामो से युक्त जीव नील लेश्या के परिणाम वाला होता है।

(३) **कापोत लेश्या का लक्षण**—वक्र वचन बोलने वाला, वक्र आचरण करने वाला, मायावी—मन की अपेक्षा वक्र, सरलता से रहित अपने दोषो को छिपाने वाला, छल पूर्वक वर्ताव करने वाला, मिथ्या दृष्टि, अनार्य, मर्म भेदी वचन बोलने वाला, चोर, मत्सरी, दूसरो की उन्नति को सहन न करने वाला, उपरोक्त परिणामो से युक्त जीव कापोत लेश्या के परिणाम वाला होता है।

(४) **तेजो लेश्या का लक्षण**—नम्र वृत्ति वाला अर्थात् अहकार, रहित, चपलता रहित, माया रहित, कुतूहल आदि न करने वाला, परम विनय भक्ति करने वाला, इन्द्रियो का दमन करने वाला, स्वाध्यायादि मे रत रहने वाला, उपधानादि तप करने वाला, धर्म मे दृढ रहने वाला, पाप से डरने वाला, सब प्राणियो का हित चाहने वाला, इन उपरोक्त परिणामो से युक्त जीव तेजो लेश्या वाला होता है।

(५) **पद्म लेश्या का लक्षण**–अल्प क्रोध वाला, अल्प मानवाला और अल्प माया वाला, अल्प लोभ वाला, शान्त चित्त वाला, अपनी आत्मा का दमन करने वाला, स्वाध्यायादि करने वाला, उपधानादि तप करने वाला, परिमित बोलने वाला, उपशान्त और जितेन्द्रिय, इन उपरोक्त गुणो से युक्त जीव पद्म लेश्या के परिणाम वाला होता है।

(६) **शुक्ल लेश्या का लक्षण**–जो पुरुष आर्त्तध्यान और रौद्र ध्यान को छोडकर, धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान को ध्याता है, शान्त चित्त वाला, अपनी आत्मा को दमन करने वाला, पॉच समितियो से युक्त, तीन गुप्तियो से गुप्त, अल्प राग वाला अथवा वीतरागी, उपशान्त और जितेन्द्रिय इन परिणामो से युक्त जीव विशिष्ट शुक्ल लेश्या के परिणाम वाला होता है अर्थात् ये सब लक्षण विशिष्ट शुक्ललेश्या वाले पुरुष मे पाये जाते है। (उत्तराध्ययन अ॰३४)

आत्मा के जो विचार है उनको भाव लेश्या कहते है और जिन पुद्गलो के द्वारा आत्मा के विचार बदलते रहते है उन पुद्गलो को द्रव्य लेश्या कहते है। लेश्याओं के नाम द्रव्य लेश्याओ के आधार पर ही रखे गये है।

छ लेश्याओ का स्वरूप समझाने के लिए दो दृष्टान्त दिये गये है। वे इस प्रकार हैं–

छ· पुरुषो ने एक जामुन का वृक्ष देखा। वृक्ष पके हुए फलो से लदा था, शाखाएँ नीचे की ओर झुकी हुई थी। उसे देखकर उन्हे फल खाने की इच्छा हुई। वे साचने लगे–किस प्रकार इसके फल खाये जायॅ ? एक ने कहा–वृक्ष पर चढने से गिरने का डर है, इसलिए इसे जड से काट कर गिरा दे और सुख से बैठ कर फल खावे। यह सुनकर दूसरे ने कहा– वृक्ष को जड से काट कर गिराने से क्या लाभ?

केवल बडी बडी डालिया ही क्यो न काट ली जायॅ। इस पर तीसरा बोला–बडी डालियॉ न काट कर छोटी–छोटी डालियॉ ही क्यो न काटली जायॅ ? क्योकि फल तो छोटी डालियो मे ही लगे हुए है। चौथे को यह बात पसन्द नहीं आई उसने कहा–केवल फलो के गुच्छे ही तोडे जाऍ। हमे तो फलो से ही प्रयोजन है। पॉचवे ने कहा–गुच्छे भी तोडने की जरूरत नहीं है। केवल पके हुए फल ही नीचे गिरा दिये जायॅ। यह सुनकर छठे ने कहा–जमीन पर काफी फल गिरे हुए है, उन्हे ही खा ले। अपना मतलब तो इन्हीं से सिद्ध हो जाएगा।

दूसरा दृष्टान्त इस प्रकार है–छ· क्रूर कर्मी डाकू किसी ग्राम मे डाका डालने के लिए रवाना हुए। वे रास्ते मे विचार करने लगे। उनमे से एक ने कहा–जो मनुष्य या पशु दिखाई दे सब को मार देना चाहिए। यह सुनकर दूसरे ने कहा–पशुओ ने हमारा कुछ नहीं बिगाडा है। हमारा तो मनुष्यो के साथ विरोध है, इसलिए मनुष्यों को ही मारना चाहिए। तीसरे ने कहा–स्त्री हत्या महापाप है। इसलिए स्त्रियो को न मारना चाहिए। यह सुनकर चौथे ने कहा–शस्त्र रहित पुरुषो पर वार करना उचित नहीं, इसलिए जिन पुरुषो के हाथ मे शस्त्र हो उन्हीं को मारना चाहिए। यह सुनकर पॉचवे चोर ने कहा–शस्त्र लिए पुरुष भी यदि डर के मारे भागते हो तो उन्हे नहीं मारना चाहिए। अन्त मे छठे चोर ने कहा–हम लोग चोर है। हमे तो धन की जरूरत है। इसलिए जिस प्रकार धन मिले वही उपाय करना चाहिए। एक तो हम लोगो का धन चोरे और दूसरे उन्हे मारे भी, यह ठीक नहीं है। यो ही चोरी पाप है। इस पर हत्या का महापाप क्यो किया जाय ?

दोनो दृष्टान्तो के पुरुषो मे पहले से दूसरे, दूसरे से तीसरे इस प्रकार आगे आगे के पुरुषो के परिणाम क्रमश अधिकाधिक शुभ

है। इन परिणामो मे उत्तरोत्तर संक्लेश की कमी और मुदुता की अधिकता है। छहो पुरुषो मे पहले पुरुष के परिणाम को कृष्ण लेश्या यावत् छठे के परिणाम को शुक्ल लेश्या समझना चाहिए।

छहो लेश्याओ में कृष्ण, नील और कापोत लेश्या पाप का कारण होने से अधर्म लेश्या है। इनसे जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है। तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या ये तीन धर्म लेश्या है। इनसे जीव सुगति मे उत्पन्न होता है।

जिस लेश्या में जीव मरता है यानी मरते समय जो लेश्या होती है, उसी लेश्या को लेकर जीव परभव मे उत्पन्न होता है। लेश्या के प्रथम और चरम समय मे जीव परभव मे नहीं जाता किन्तु अन्तर्मुहूर्त बीतने पर और अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर ही जीव परभव जाता है। मरते समय लेश्या का अन्तर्मुहूर्त बाकी रहता है। इसलिए परभव मे भी जीव उसी लेश्या से युक्त होकर उत्पन्न होता है।

इन छह लेश्याओं मे पहले की तीन अशुभ और अधर्म लेश्याएं हैं। इन लेश्याओ मे अशुभ गति का बंध पडता है। शेष तीन लेश्याएं शुभ और धर्म लेश्याए हैं। इन लेश्याओ मे शुभ गति का बन्ध पडता है।

एकेन्द्रिय भवनपति और वाणव्यन्तर मे पहले की चार लेश्याएं होती हैं। विकलेन्द्रिय मे पहले की तीन, ज्योतिषी मे तेजोलेश्या मिलती है। वैमानिक मे पिछली तीन लेश्याएं मिलती हैं। तिर्यच, पंचेन्द्रिय तथा मनुष्य मे छहों लेश्याएं मिलती है।

अठारहवें बोले दृष्टि तीन-

सम्यक् दृष्टि, २ मिथ्यादृष्टि, ३ सम्यक्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि)।

दृष्टि किसको कहते है ? अन्त करण की प्रवृत्ति को अर्थात् मन के अभिप्राय को दृष्टि कहते है।

पदार्थ के प्रति मन मे रहा दृष्टिकोण अथवा जीव की अन्तरुचि को दृष्टि कहते है।

सम्यक् दृष्टि—जीव आदि तत्त्व पर श्रद्धा रखना अथवा सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, सुशास्त्र पर श्रद्धा रखना।

मिथ्या दृष्टि—जीव आदि पर विपरीत श्रद्धा रखना, कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, कुशास्त्र पर श्रद्धा रखना।

सम्यक् मिथ्यादृष्टि (मिश्र दृष्टि)—सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, सुशास्त्र एव कुदेव, कुधर्म, कुगुरु, कुशास्त्र आदि को समान मानना, अथवा जीव—अजीव तत्व मे समान दृष्टि, मिश्र दृष्टि।

उन्नीसवें बोले ध्यान चार-

१ आर्त्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्मध्यान, ४ शुक्लध्यान।

ध्यान किसको कहते है ? एक वस्तु या विषय पर मन को स्थिर करना उसको ध्यान कहते है। वह (ध्यान) अन्तर्मुहूर्त मात्र रहता है। वह चार प्रकार का होता है—

(१) **आर्त्तध्यान**—अनिष्ट वस्तु के वियोग और इष्ट वस्तु के सयोग को चिन्तवन करना। (२) **रौद्रध्यान**—हिसादि दुष्ट आचरण चिन्तवन करना। (३) **धर्मध्यान**—निर्जरा के लिए आचरणादि का चिन्तवन करना, तथा ससार की असारता का चिन्तवन करना। (४) **शुक्लध्यान**—ससार पुद्गल, कर्म और जीवादि के स्वरूप—स्वभाव का विशुद्ध रीति से चिन्तवन करना।

बीसवें बोले षट् (छः) द्रव्यों के ३० भेद-

छ द्रव्यो के नाम—१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ कालद्रव्य, ५ जीवास्तिकाय, ६ पुद्गलास्तिकाय।

द्रव्य किसको कहते हैं ? जिसमे गुण और पर्याय उत्पन्न होते है, ठहरते है और नष्ट होते है, उसको द्रव्य कहते है। अस्ति शब्द का अर्थ प्रदेश है और काय का अर्थ राशि है। प्रदेशो की राशि वाले द्रव्यो को अस्तिकाय कहते है। तीनो काल से उत्पाद और व्यय गुण पर्याय का रहता है और ध्रौव्य गुण से अस्तित्व बना रहता है।

धर्मास्तिकाय के पांच भेद-

धर्मास्तिकाय को पांच प्रकार से जाना जाता है–१ द्रव्य से–एक द्रव्य, २ क्षेत्र से–सम्पूर्ण लोक प्रमाण, ३ काल से–आदि अन्त रहित, ४ भाव से–वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी, अजीव, शाश्वत्, सर्वव्यापी और असंख्यातप्रदेशी है। ५ गुण से–चलन गुण, पानी मे मछली का दृष्टान्त, जैसे पानी के आधार (सहायता) से मछली चलती है, इसी तरह जीव और पुद्गल दोनो धर्मास्तिकाय के आधार (सहायता) से चलते है।

अधर्मास्तिकाय के पांच भेद-

अधर्मास्तिकाय को पाच प्रकार से जाना जाता है–१ द्रव्य से–एक द्रव्य, २ क्षेत्र से–सम्पूर्ण लोक प्रमाण, ३ काल से–आदि अन्त रहित, ४ भाव से–वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी, अजीव, शाश्वत्, सर्वव्यापी और असंख्यातप्रदेशी है। गुण से–स्थिर गुण, थके हुए पथिक को छाया का दृष्टान्त, जैसे थके हुए पथिक को छाया का आधार (सहायता) उसी तरह ठहरे हुए जीव और पुद्गल के ठहरने मे अधर्मास्तिकाय का आधार (सहायता) है।

आकाशास्तिकाय के पांच भेद-

आकाशास्तिकाय को पांच प्रकार से जाना जाता है। द्रव्य से–एक द्रव्य, २ क्षेत्र से–लोकालोक प्रमाण, ३ काल से–आदि अन्त रहित, ४ भाव से–वर्ण नही, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी,

अजीव, शाश्वत्, सर्वव्यापी और अनन्त प्रदेशी है। ५ गुण से–पोलार गुण, जगह देने का गुण। आकाश मे विकास, भीत मे खूटी का दृष्टान्त, दूध मे बतासा का दृष्टान्त।

काल द्रव्य के पांच भेद-

काल द्रव्य को पाच प्रकार से जाना जाता है–१ द्रव्य से–एक काल–अनन्त द्रव्यो पर प्रवर्ते, २ क्षेत्र से–अढाई द्वीप प्रमाण, ३ काल से–आदि अन्त रहित, ४ भाव से–वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी, अजीव, शाश्वत्, और अप्रदेशी है। ५ गुण से–वर्तन गुण, नये को पुराना करे पुराने को नष्ट करे, कपडे को कैची का दृष्टान्त।

जीवास्तिकाय के पांच भेद-

जीवास्तिकाय को पाच प्रकार से जाना जाता है–१ द्रव्य से–अनन्त जीव द्रव्य, २ क्षेत्र से–सम्पूर्ण लोक प्रमाण, ३ काल से–आदि अन्त रहित, ४ भाव से–वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी, अजीव, शाश्वत्, सर्वव्यापी और अनन्त प्रदेशी है। एक जीव आसरी असख्यात प्रदेशी है। ५ गुण से उपयोग गुण, चन्द्रमा की कला का दृष्टान्त।

पुद्गलास्तिकाय के पांच भेद-

पुद्गलास्तिकाय को पांच प्रकार से जाना जाता है–१ द्रव्य से–अनन्त द्रव्य, २ क्षेत्र से–सम्पूर्ण लोक प्रमाण, ३ काल से–आदि अन्त रहित, ४ भाव से–वर्ण है, गन्ध है, रस है, स्पर्श है, रूपी, अजीव, शाश्वत् और अनन्त प्रदेशी है। ५ गुण से– पूरण, गलन, सडन, विध्वसन गुण, बादल का दृष्टान्त, बादल की तरह मिलते और बिखरते है।

अस्तिकाय–अस्ति =प्रदेश, काय= समूह, प्रदेशो के समूह को अस्तिकाय कहते है। छह द्रव्यो मे पाच द्रव्य अस्तिकाय हैं–धर्म,

अधर्म, आकाश, जीव और पुद्गल। काल द्रव्य प्रदेशात्मक न होने से अस्तिकाय नही है।

छह द्रव्यो मे पाच द्रव्य अरूपी हैं–धर्म, अधर्म, आकाश, काल और जीव, क्योकि इनमे वर्ण आदि का अभाव है, अर्थात् नहीं है।

छह द्रव्यो मे एक द्रव्य रूपी है–पुद्गल द्रव्य। वह इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य है, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श से युक्त है।

छह द्रव्यों मे पांच द्रव्य अजीव हैं, एक द्रव्य जीव है–जीव द्रव्य–जीवास्तिकाय।

जीव द्रव्य क्या है, जीव द्रव्य कितने और कहां है ?

जिसमें चेतना गुण पाया जाय, उसको जीव द्रव्य कहते है। जीव द्रव्य अनतानन्त है और वे समस्त लोकाकाश मे भरे हुए है।

एक जीव कितना बडा है ?

एक जीव प्रदेशो की अपेक्षा लोकाकाश के बराबर है। परन्तु संकोच विस्तार के कारण अपने अपने शरीर के प्रमाण है और मुक्त जीव जिस शरीर से मुक्त हुए उस शरीर के एक तिहाई भाग प्रमाण है। मोक्ष जाने से पहले समुद्घात करने वाला जीव लोकाकाश के बराबर होता है।

पुद्गल द्रव्य किसको कहते हैं ?

जिसमें स्पर्श, रस, गध और वर्ण पाये जाय।

पुद्गल द्रव्य के कितने भेद हैं ?

दो भेद है–एक परमाणु, दूसरा स्कन्ध।

परमाणु किसको कहते हैं ?

सबसे छोटे पुद्गल को परमाणु कहते हैं, जिसके दो टुकडे नहीं हो सकते।

स्कन्ध किसको कहते हैं ?

अनेक परमाणुओ के बन्ध को स्कन्ध कहते है।

पुद्गल द्रव्य कितने और उनकी स्थिति कहां है ?

पुद्गल अनन्तानन्त हैं और वे समस्त लोकाकाश मे भरे हुए हैं।

आकाश के कितने भेद हैं ?

आकाश एक ही अखण्ड द्रव्य है।

आकाश कहां पर है ?

आकाश सर्व व्यापी है।

काल द्रव्य किसको कहते हैं ?

जो जीवादिक द्रव्यो के परिणमन मे सहकारी हो, वह कालद्रव्य है।

कालद्रव्य के कितने भेद हैं ?

कालद्रव्य के दो भेद है—निश्चयकाल और व्यवहार काल।

यदि पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है तो वह अस्तिकाय कैसे हुआ ?

पुद्गल परमाणु शक्ति की अपेक्षा से अस्तिकाय है अर्थात् स्कन्ध रूप मे होकर बहुप्रदेशी हो जाता है, इसलिए उपचार से अस्तिकाय है।

लोकाकाश किसको कहते हैं ?

जहां तक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल ये पाच द्रव्य है उसको लोकाकाश कहते है।

लोकाकाश के बराबर कौनसा जीव है ?

मोक्ष जाने से पूर्व समुद्घात करने वाला जीव लोकाकाश के बराबर होता है।

अलोकाकाश किसे कहते है ?

लोक से बाहर के आकाश को अलोकाकाश कहते है।

लोक की मोटाई, ऊंचाई, चौडाई कितनी है ?

लोक की मोटाई उत्तर और दक्षिण दिशा मे सर्वत्र सात राजू हैं, चौडाई पूर्व और पश्चिम दिशा मे शून्य मे (नीचे जड मे) सात राजू है। ऊपर क्रम से घटकर सात राजू की ऊचाई पर चौडाई एक राजू है। फिर क्रम से बढकर साढे दस राजू की ऊचाई पर चौडाई पाच राजू है। फिर क्रम से घटकर चौदह राजू की ऊचाई पर एक राजू चौडाई है और ऊर्ध्व और अधो दिशा मे ऊचाई चौदह राजू है।

११ द्वार-

षट् द्रव्य पर कर्म ग्रन्थ मे ग्यारह द्वार कहे गये है–

१ **परिणामी**–निश्चय मे छहो द्रव्य परिणामी है–व्याप्त है। व्यवहार मे जीव और पुद्‌गल दोनो द्रव्य परिणामी है (सम्पूर्ण लोक मे) शेष चार अपरिणामी है।

२ **जीव**–एक जीव है तथा पाच द्रव्य अजीव है।

३ **मूर्तिक**–एक पुद्‌गल तो मूर्तिक है शेष पाच द्रव्य अमूर्तिक है।

४ **सप्रदेशी**–पांच द्रव्य तो सप्रदेशी है और एक काल द्रव्य अप्रदेशी है।

५ **एक**–धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाशास्ति ये तीन द्रव्य तो एक–एक है और जीव, पुद्‌गल, काल ये तीन द्रव्य अनेक है अर्थात् अनन्त है।

६ **क्षेत्री**–आकाशास्तिकाय तो क्षेत्री है शेष पाच द्रव्य अक्षेत्री है।

७ **क्रिया**–निश्चय मे छहो द्रव्य सक्रिय है अर्थात् अपनी अपनी क्रिया करते है। व्यवहार मे जीव और पुद्‌गल क्रिया करते है, चार द्रव्य अक्रिय है।

८ **नित्य**–निश्चय मे छहो द्रव्य नित्य है, व्यवहार मे जीव और पुद्‌गल दो द्रव्य अनित्य है, बाकी चार द्रव्य नित्य है।

९ **कारण**–जीव के पाचो ही द्रव्य कारण हैं, जीव पाचो के अकारण है। (जीव द्रव्य अकारण शेष पाच द्रव्य कारण) या पाच द्रव्य अकारण, एक जीव द्रव्य कारण भी सभव है।

१० **कर्ता**–छहो द्रव्य अपने अपने स्वरूप के कर्ता है, व्यवहार मे जीव द्रव्य कर्ता है, पाच द्रव्य अकर्ता है।

११ **सर्व गति**–आकाशास्तिकाय तो सर्वगति, पाच द्रव्य असर्वगति, आकाशस्तिकाय के भाजन (बर्तन) मे पाच द्रव्य समा जाते है। आकाश द्रव्य सर्व दूर व्याप्त है और पाच द्रव्यो ने आकाशरूप भाजन मे प्रवेश किया है।

इक्कीसवे बोले राशि दो-

जीव राशि, अजीव राशि। जीव राशि के ५६३ और अजीव राशि के ५६० भेद होते है।

राशि किसको कहते है ? वस्तु के समूह को राशि कहते है।

ससारी जीव के ५६३ भेद इस प्रकार है–नारकी के १४ भेद, तिर्यञ्च के ४८ भेद, मनुष्य के ३०३ भेद (१५ कर्मभूमि ३० अकर्मभूमि ५६ अतरद्वीपा) ये १०१ गर्भज मनुष्य का पर्याप्तता और १०१ अपर्याप्तता १०१ समूर्च्छिम मनुष्य, देवता के १६८ भेद। ये पॉच सौ त्रेसठ भेद हुए।

अजीव राशि के ५६० भेद–जिसमे अजीव अरूपी के ३० और अजीव रूपी के ५३०। ये कुल ५६० भेद हुए।

अजीव अरूपी के ३० भेद इस प्रकार है–धर्मास्तिकाय के तीन भेद–स्कन्ध (सम्पूर्ण वस्तु), देश (दो तीन आदि भाग), प्रदेश (जिसका दूसरा भाग नहीं हो सके) ये तीन। अधर्मास्तिकाय के तीन भेद–स्कन्ध, देश, प्रदेश। आकाशास्तिकाय के ३ भेद–स्कन्ध, देश, प्रदेश। कालद्रव्य का एक भेद=१०। धर्मास्तिकाय के पॉच भेद–१

द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, ५ गुण। अधर्मास्तिकाय के पॉच भेद–१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, ५ गुण। आकाशास्तिकाय के ५ भेद–१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, ५ गुण पुद्गलास्तिकाय के ५ भेद–१ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, ५ गुण=२०। कुल ३० भेद।

अजीव रूपी के ५३० भेद इस प्रकार है–

संठाण (सस्थान) ५–परिमण्डल, वट्ट, तस, चउरंस, आयत। एक एक के २०×५=१००।

वर्ण ५–काला, नीला, लाल, पीला, सफेद। एक एक के भेद २०×५=१००।

रस ५–तीखा, कडवा, कषायला, खट्टा, मीठा। एक एक के भेद २०×५=१००।

गन्ध २–सुगन्ध दुर्गन्ध एक एक के भेद २३×२=४६।

स्पर्श ८–कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण स्निग्ध, रूक्ष। एक एक के भेद २३×८=१८४।=कुल ५३० भेद।

जीव राशि

नारकी-१४ सात पर्याप्त, सात अपर्याप्त।

तिर्यच=४८–१ सूक्ष्म पृथ्वीकाय, २ बादर पृथ्वीकाय, ३ सूक्ष्म अप्काय, ४ बादर अप्काय, ५ सूक्ष्म तेउकाय, ६ बादर तेउकाय, ७ सूक्ष्म वायुकाय, ८ बादर वायुकाय, ९ सूक्ष्म वनस्पति, १० प्रत्येक वनस्पति, ११ साधारण वनस्पति, १२ बेइन्द्रिय, १३ तेइन्द्रिय, १४ चौइन्द्रिय, १५ असज्ञी (समूर्च्छिम) जलचर, १६ सज्ञी (गर्भज) जलचर, १७ असंज्ञी स्थलचर, १८ सज्ञी स्थलचर, १९ असंज्ञी उरपरिसर्प, २० सज्ञी उरपरिसर्प, २१ असंज्ञी भुज परिसर्प, २२ सज्ञी भुज परिसर्प, २३ असज्ञी खेचर, २४ सज्ञी खेचर।

इन सबका पर्याप्त और अपर्याप्त मिलकर ४८ भेद।

जलचर—जो जल में रहे, चले जैसे मच्छ, कच्छ, कछुआ,मेंढक आदि। इनका कुल १२.५ लाख क्रोड़ है।

थलचर—जो जमीन पर चले। इनके चार भेद हैं—

१ **एक खुरा**—घोड़ा, गधा, खच्चर इत्यादि।

२ **द्वि खुरा**—ऊंट, गाय, भैंस, बैल, बकरा, हिरण, खरगोश आदि।

३ **गण्डी पद** (गण्डी पया)—हाथी, गेडा इत्यादि।

४. **श्वान पद** (सण पया)—(जिसके पंजे नाखनु वाले हों) जैसे—बाघ, कुत्ता, बिल्ली, सियार, जरख, रींछ, बंदर, सिंह, चीता आदि। इनका कुल १० लाख क्रोड़ है।

उपपरिसर्प—जो पेट के बल चलता है जैसे सर्प, अजगर, असालिया (दो घडी मे ४८ कोस (गाउ) लंबा होता है। चक्रवर्ती की राजधानी के नीचे अथवा नगर के खाले के नीचे पैदा होता है, उसको भस्म नामक दाह होने पर ४८ गाउ की मिट्टी खा जाता है, जमीन थोथी हो जाती है, चक्रवर्ती की सेना उस जमीन में उतर जाती है। ऐसी पोली जमीन कर दे उसे असालिया कहते हैं। चक्रवर्ती की सेना के विध्वंश के समय ही असालिया पैदा होता है। अढाई द्वीप के बाहर महुरग नामक सर्प होता है, जो एक हजार योजन लबा होता है। इनकी कुल १० लाख क्रोड है।

भुज परिसर्प—जो भुजा के बल चलता है जैसे कोल, नवलीयो, चूहा, गिलहरी, चन्दणगोह, पाटडा गोह आदि। इनका कुल ९ लाख क्रोड है।

खेचर—जो आकाश मे उडते हैं। इनके चार भेद है—

१. **चर्म पक्षी**—चमड़े जैसी पाख होती है, ये अढाई द्वीप में और बाहर दोनों जगह है।

२ **रोम पक्षी**–सुवाली पख के पक्षी जैसे–मोर, कबूतर, कौआ, मैना, तोता, पोपट, बुगला, कोयल, चील, तीतर, बाज आदि। ये अढाई द्वीप मे और बाहर दोनो जगह है।

३ **समुद्ग पंखी**–इनके पख नारियल (डाभ) की तरह मुडे हुए होते है। ये पक्षी अढाई द्वीप के बाहर है।

४ **वितत पक्षी**–इनके पंख सदैव फटे हुए रहते है–ये पक्षी अढाई द्वीप बाहर है।

इनकी कुल १२ लाख क्रोड है।

मनुष्य के ३०३ भेद है–१५ कर्म भूमि, ३० अकर्म भूमि, ५६ अन्तरद्वीप, ये १०१ पर्याप्त, १०१ अपर्याप्त और १०१ सम्मूर्च्छिम अपर्याप्त।

१५ कर्मभूमि– ५ भरत, ५ ऐरवत और ५ महाविदेह।

मनुष्य का क्षेत्र कहां है ? एक लाख योजन का जम्बूद्वीप है उसमे से १ भरत १ ऐरवत १ महाविदेह ये तीन जम्बूद्वीप मे है, उसके चारो तरफ दो लाख योजन का लवण समुद्र है, उसके चारो तरफ चार लाख योजन का धातकी खड है, उसमे २ भरत २ ऐरावत २ महाविदेह, ये छह क्षेत्र है, उसके चारो तरफ आठ लाख योजन का कालोदधि समुद्र है, उसके चारो ओर आठ लाख योजन का पुष्करार्द्ध द्वीप (अर्द्ध पुष्कर) है, उसमे २ भरत २ ऐरावत २ महाविदेह, ये छह क्षेत्र है–ये पन्द्रह क्षेत्र।

कर्मभूमि किसे कहते हैं ?

जहा राजा रानी की रीति है, देना देते व लेना लेते है, कवारा कवारी शादी करते है, साधु साध्वी का व्यवहार है तथा ७२ कला पुरुषो की और ६४ कला स्त्रियो की १०० प्रकार का शिल्प जहा विद्यमान हो, त्रेसठ शलाका पुरुष सहित, असि–तलवार की कमाई, मसि–लेखनी की कमाई, कसि–कृषि की कमाई करके पेट

भरते हैं। खेत, सेत, उवीखेत--खेत अर्थात् खेड्या धान निपजता है, सेत--सींचने पर धान उत्पन्न होता है और उवीखेत--अड्क धान पैदा होता है। ऐसा धान चार प्रकार का--सीटो, डोडो, उम्बी, फली, सीटो--बाजरियो, मक्की आदि भेद। डोडो--अफीम का डोडा, धतूरे का डोडा आदि भेद। उम्बी--ज्वार, चावल आदि की। फली--मोठ, ग्वार आदि की।

३० अकर्मभूमि मनुष्य--

५ हेमवय ५ हिरण्यवय, ५ हरिवास, ५ रम्यक वास, ५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु।

१ हेमवय, १ हिरण्यवय, १ हरिवास, १ रम्यक वास, १ देवकुरु, १ उत्तरकुरु, ये छह जम्बूद्वीप मे है।

२ हेमवय, २ हिरण्यवय, २ हरिवास, २ रम्यक वास, २ देवकुरु, २ उत्तरकुरु, ये बारह क्षेत्र धातकीखण्ड मे है।

२ हेमवय, २ हिरण्यवय, २ हरिवास, २ रम्यक वास, २ देवकुरु, २ उत्तरकुरु, ये बारह क्षेत्र अर्द्ध पुष्कर द्वीप मे है।

अकर्मभूमि किसको कहते है ? जहा राजा नहीं, राणा नही, कवारा कवारी शादी नही करे, देना देते नही, लेना लेते नही, साधु--साध्वी का व्यवहार नहीं, ६३ शलाका पुरुष रहित (२४ तीर्थकर, १२ चक्रवर्ती, ६ बलदेव, ६ वासुदेव, ६ प्रतिवासुदेव) विहरमान, गणधर आदि रहित। असि, मसि, कृषि नही होते वरन् उनकी इच्छाओ की पूर्ति १० प्रकार के कल्पवृक्षो से होती है--

१ मतगा--मधु, मणिरस, सुगन्धादिक पानी देने वाले।

२ भृतगा--अनेक प्रकार के रत्न जडित बर्तन देने वाले।

३ तुडियगा--४६ प्रकारके वाद्ययत्र, नाटक के देने वाले।

४ दीवगा--दीपक के समान प्रकाश देने वाला।

५ जोइयगा–सूर्य की ज्योति के समान ज्योति देने वाले।

६. चित्रांगा–चित्राग सहित पुष्प माला देने वाले।

७ चित्ररसा–मनोज्ञ भोजन आदि के देने वाले।

८ मणियंगा–रत्न जडित आभूषण के देने वाले।

६ गेहकारा–४२ प्रकारके भवन–महल के देने वाले।

१० अणियगा–अनेक प्रकार के रत्न जडित महीन वस्त्र देने वाले।

छप्पन अन्तरद्वीप के मनुष्य ५६ अन्तरद्वीप मे है। (दृष्टव्य जीवाभिगम सूत्र)

इसी प्रकार १०१ सम्मूर्च्छिम मनुष्य–विष्टा, पेशाब, कफ, वमन, पित्त, रक्त, अशुचि आदि मे पैदा होते हैं।

१६८ प्रकार के देवता

१० भवनपति (सोलहवां बोल)

१५ परमाधार्मिक–१ अम्बे, २ अम्बरसे, ३ शाम, ४ सबल, ५ रूद्र, ६ महारूद्र, ७ काल, ८ महाकाल, ६ असिपत्र, १० धनुषपत्र, ११ कुम्भ, १२ बालु, १३ वेयरण, १४ खरखर, १५. महाघोष।

१६ वाण व्यन्तर (सोलहवा बोल)

१० तिर्यक जृंभिक–१ अन्न जृम्भिक, २. पाण जृम्भिक, ३ ल्यन जृम्भिक, ४ शयन जृम्भिक, ५ वस्त्र जृम्भिक, ६. फूल जृम्भिक, ७ फल जृम्भिक, ८ फलफूल जृम्भिक, ६ बीज जृम्भिक, १० अवियत्त जृम्भिक।

१० ज्योतिषी (सोलहवां बोल)

३ किल्विषी–१ तीन पल्य की स्थिति वाले। ज्योतिषी देवो के ऊपर व प्रथम द्वितीय स्वर्ग के नीचे।

२ तीन सागर की स्थिति वाले। प्रथम द्वितीय स्वर्ग के ऊपर किन्तु तृतीय चतुर्थ स्वर्ग के नीचे।

३ तेरह सागरिया–तेरह सागर की स्थिति वाले, ५वे देवलोक के ऊपर छठे देवलोक के नीचे।

१२ देवलोक (सोलहवा बोल)

६ लोकातिक–१. सारस्वत, २ आदित्य, ३ वह्नि, ४ वरूण, ५ गजतोया, ६ तुसीया, ७ अव्याबाधा, ८ अग्गिचा, ६ रीट्ठा।

६ ग्रैवेयक-(सोलहवां बोल)

५ अनुत्तर विमान (सोलहवां बोल)

ये ६६ पर्याप्त और ६६ अपर्याप्त।

इस प्रकार ससारी जीव के १४ + ४८ + ३०३ + १६८ = ५६३ भेद होते हैं।

बाईसवें बोले श्रावकजी के बारह व्रत

१ पहले अहिसाव्रत–स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत मे श्रावकजी त्रस जीव की हिसा करे नहीं, करावे नहीं, मन वचन, काया से। २ दूसरे सत्यव्रत–स्थूल मृषावाद विरमण व्रत मे श्रावकजी मोटा (स्थूल) झूठ बोले नहीं, बोलावे नहीं मन, वचन काया से। ३ तीसरे स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत (अचौर्य) मे श्रावकजी मोटी (स्थूल) चोरी करे नहीं, करावे नहीं मन वचन काया से। ४ चौथे स्थूल मैथुन विरमण व्रत (परदार विवर्जन एवं स्वदार सतोष) मे श्रावकजी पर-स्त्री सेवन का त्याग करे और अपनी स्त्री की मर्यादा करे। ५ पॉचवे स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत में श्रावकजी परिग्रह की मर्यादा करे। ६ छठे दिशा परिमाण व्रत मे श्रावकजी छह, (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊची, नीची) दिशा की मर्यादा करे। ७ सातवे उपभोग परिमाण व्रत मे श्रावकजी छब्बीस बोल की मर्यादा करे और पन्द्रह कर्मादान का त्याग करे। ८ आठवे अनर्थ दण्ड विरमण व्रत मे श्रावकजी अनर्थ दण्ड का त्याग करे। ६ नवमे सामायिक व्रत में

श्रावकजी प्रतिदिन शुद्ध सामायिक करे (सामायिक का नियम रखे) १० दसवे देशावकासिक व्रत मे श्रावकजी देशावकासिक पौषध करे, सवर करे, चौदह नियम चितारे। ११ ग्यारहवे पौषधोपवास व्रत मे श्रावकजी प्रतिपूर्ण पौषध करे। १२ बारहवे अतिथि सविभाग व्रत मे श्रावकजी प्रतिदिन चौदह प्रकार की वस्तु मे से जो निर्दोष हो सो देवे।

व्रत किसको कहते है ? मर्यादा मे चलने को व्रत कहते है।

इनमे पाच अणुव्रत है, तीन गुणव्रत है और चार शिक्षा व्रत है इनका त्याग दो करण और तीन योग से होता है।

'व्रत' का अर्थ है विरति अर्थात् अलग होना, विरक्त हो जाना। किससे ? अनियमितता, अमर्यादा, अत्याग से। यानी हिसा, (झूठ) असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य तथा परिग्रह से अलग होने के भाव, वृत्ति और क्रिया 'व्रत' का स्वरूप है।

चित्त रूपी नदी कभी पुण्य की ओर कभी पाप की ओर प्रवाहित होती है। इसकी कोई निश्चित स्थिति नही है। जीवन मे एक, दो पदार्थ नही अनन्त पदार्थ, दृश्य तथा परिस्थितिया और उपक्रम है। मन इनके माध्यम से संकल्प-विकल्प की सृष्टि रचता हुआ कभी बुरा और अच्छा, हो तो उसके अनुसार इष्ट की प्राप्ति, अनिष्ट की विरक्ति के लिए क्रियाए भी करता है और उन क्रियाओ द्वारा कार्य-कर्म का सर्जन तथा उससे प्रवृत्ति, सस्कार और उनसे पुन वही कर्म आदि। यानी वही सुख दु ख का क्रम, अतएव मनीषियो ने इसको सीमित तथा सयमित एवं आवश्यकीय जानकर एक सीमा, सयम और अनिवार्यता मे करने का चिन्तन दिया है। इससे हमारे मन के दु संकल्प-विकल्प, दूर होगे, जीवन में सुन्दर परिवर्तन आयेगा। अन्यथा अनन्त वैभव, ससार तथा सकल्प मे उलझे मानव को कही जीवन का सही प्रकाश नही मिलेगा।

इसी सीमा निर्धारण, मर्यादा के रूप को 'व्रत' कहा गया है। इनकी सख्या बारह निर्धारित की गयी है महामनीषियो द्वारा। अत यह बारह व्रत या बारह व्रत रूप गृहस्थ धर्म कहे जाते है। ये बारह व्रत भी तीन भागो मे विभाजित हैं–पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षा व्रत।

पांच अणुव्रत-

अणु का अर्थ लघु या छोटा। महाव्रत की अपेक्षा जो गुण, साधना की दृष्टि से छोटा व्रत है वह अणुव्रत है। अथवा जो अणु/अश थोडे रूप मे स्वीकार किये गये है।

(१) **स्थूल प्राणातिपात विरमण**–स्थूल + मोटे रूप मे, अशत प्राणातिपात = प्राणो का नष्ट करना अर्थात् हिसा से विरमण= निवृत्त होना स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत है। इसमे (प्राणी) व्यक्ति सापराध (स्वशरीर के लिए पीडाकारी, अपराधी तथा स्व–सम्बन्धी के अपराधी आदि) के अतिरिक्त निरपराध प्राणी हिसा का त्याग दो करण/करू नही, करवाऊ नही, तीन योग–मन, वचन और काया से करता है। (देश–राज्य, जाति तथा समाज के अपराधी इसी के अन्तर्गत आ जाते है)। इसका दूसरा नाम अहिसाणुव्रत है।

इस अहिसाणुव्रत के पांच अतिचार दोष है–बन्ध, वध, छविच्छेद अतिभार, भक्त–पान व्यवच्छेद।

१ **बन्ध**–द्विपद–नौकर आदि, चतुष्पद–चौपाये, गाय घोडादि को दुष्ट भावो, निर्दयता, क्रोधवश असावधानी से रस्सी आदि से बाध देना बन्ध है।

२ **वध.**–बैंत, कोडे आदि से मारना वध है। पुत्र, परिचारक आदि, गाय, घोडा आदि (द्विपद–चतुष्पद) को क्रूरता, निर्दयतावश अपराध पर मारना वध अतिचार है।

३ **छविच्छेदः**— दोपाये, चौपायो के शस्त्र द्वारा दुष्ट भावों से प्रेरित होकर शरीर के अंग—उपांग या अंगोपांग का काटना छेदना।

४. **अतिभारः**—शक्ति से अधिक बोझ लादना अतिभार अतिचार है।

५ **भक्त-पान-विच्छेदः**—भोजन—जल आदि को बिना कारण निर्दयता, क्रोधादि में आकर न देना भक्त—पान विच्छेद है।

उपर्युक्त पांच अतिचार अर्थ, प्रयोजन तथा सापेक्ष अवस्था मे नहीं है। रोग, शिक्षा, विपत्ति रक्षा, अभ्यास के लिए प्राणी (मनुष्य, पशु—पक्षी) की वध, बन्धन आदि क्रियाएं करनी पडे तो अतिचार नहीं होता क्योंकि मन मे हित, करुणा आदि भाव रहते हैं।

(२) **स्थूल मृषावाद विरमण**—मोटे रूप मे असत्य बोलने का त्याग। वह रूप है कन्या—वर, गाय आदि पशु, भूमि तथा धरोहर के सम्बन्ध मे असत्य बोलने का त्याग दो करण, तीन योग से करता है। इसका दूसरा नाम सत्याणुव्रत है। इसमें मोटे तौर पर उक्त कन्यादि सम्बन्धी पांच प्रकार के असत्य का परित्याग तथा सूक्ष्म का अभ्यास किया जाता है। इस व्रत के पांच अतिचार दोष है—

१ **सहसाभ्याख्यानः**—सहसा=अकस्मात् बिना विचारे, असावधानी से, अभ्याख्यान=(दूसरे पर) कलंक—मिथ्या आरोप लगाना।

२. **रहस्योऽभ्याख्यानः**—किसी के रहस्य का प्रकट करना अथवा एकान्त स्थान मे विचार करते हुए एकत्रित व्यक्तियो पर राजद्रोह आदि का आरोप लगाना। उक्त दोनों आकूट्या (जानबूझ कर) करने से अनाचार है।

३. **स्वदारमंत्र भेद**—अपनी पत्नी से हुई गुप्त (अप्रकाश्य) बात का दूसरे से कह देना स्वदार मंत्र भेद है। उपचार से स्त्री के लिए पुरुष, पुरुष के लिए स्त्री तथा मित्र आदि के साथ हुई वार्ता

से लज्जा, सकोच तथा अपमान के कारण आत्म हत्या का प्रसग उपस्थित हो सकता है।

४ **मृषोपदेशः**—मृषा—मिथ्या, असत्य, पीडाकारी, उपदेश बात या शिक्षा कहना मृषोपदेश है। मृषोपदेश/गलत शिक्षा, सलाह, राय मशविरा देने से घर, सस्था, समाज टूटने का भय रहता है।

५ **कूटलेखकरणः**— कूट = झूठ, जाली, लेख = दस्तावेज, स्टाम्प—मोहर, हस्ताक्षर आदि करण = करना, लिखना, बनाना कूट लेखकरण है। यह अनुपयोग, असावधानी से किया गया अतिचार है अन्यथा अनाचार है।

(३) स्थूल अदत्तादान विरमण—मोटे रूप से अदत्त = बिना दी हुई (वस्तु) आदान = ग्रहण करना, विरमण=उनसे विलग—निवृत्त होना स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत है। अदत्तादान (चौर्य कर्म) पाच प्रकार का है—खात खानना, गाठ खोलकर निकालना, जेब काटना, ताले मे चाबी लगाकर खोलना, मार्ग मे लूटना, किसी की गिरी पडी या भूली वस्तु का उठा लेना। ऐसे स्थूल चौर्य कर्म का (चोरी) का दो करण, तीन योग से त्याग करता है।

इस व्रत ग्रहण से समाज मे भण्ड तथा राज्य से दण्ड नही मिलता। व्यक्ति चोर आदि दु विशेषणो से नहीं पुकारा जाता। इस अचौर्य अणुव्रत के पाच अतिचार है —

१ **स्तेनाहृतः**—चोर द्वारा चुराई वस्तु को लोभवश खरीदना या छुपा लेना अथवा चोर को अपने यहा आश्रय देना।

२ **स्तेन प्रयोगः**— चोरी के लिए प्रेरित करना, चोरी के उपकरण (साधन) देना, उसकी सहायता करना "जानते हुए कि यह चोर है"।

३ **विरुद्ध राज्यातिक्रम**·—शत्रु राजाओ के राज्य मे जाना। क्योकि विरोध के समय आवागमन निषिद्ध होता है। अथवा राज्य

नियम के विरुद्ध आचरण करना। जैसे कि चुगी, बिक्री, आय आदि के कर न देना।

४ **कूट तुल-कूट मापः**—असत्य तोल और माप रखना और उससे व्यवहार करना। जैसे कि देते हुए कम तोल कर या माप कर देना किन्तु लेते समय बडे तोल—माप से लेना, कूट तुला—कूट माप अतिचार है।

५ **तत्प्रतिरूपक व्यवहारः**—बहुमूल्य वाली वस्तु मे उसी रूप—रग वाली घटिया वस्तु को मिलाकर देना या असली के समान ही नकली वस्तु को असली रूप मे देना, अर्थात् भेल—सभेल करना। तत् = वह, प्रतिरूपक = उस रूप वाला, व्यवहार = विक्रय कार्य करना।

(४) **स्वदार-संतोष परदार विवर्जन व्रतः**- स्व = अपनी, दारा = स्त्री, पत्नी मे सतोष। अपनी विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त अन्य मनुष्य तथा तिर्यच स्त्रियों के साथ सहवास का त्याग करना, स्वादार सतोष परदार विवर्जन व्रत है। इस ब्रह्मचर्याणव्रत से "मातृवत् परदाराणि" की भावना दृढ होती है। समाज मे सदाचार व्यवस्था ठीक बनी रहती है।

इस व्रत के पाच अतिचार हैं—

१ **इत्वरिकपरिगृहिता गमनः**—इत्वरिका = अल्प आयु या अल्पकाल के लिए, परिगृहिता + ग्रहण की हुई स्त्री से गमन करना। अल्पवयस्क से अभिप्राय विवाहिता स्त्री से जो कि मिथुन क्रिया योग्य नही है। गमन का अर्थ यहा चेष्टा आदि है।

२ **अपरिगृहिता गमनः**—जिन्हे ग्रहण नही किया है अभी किसी ने ऐसी स्त्रियो से गमन करना। जैसे कि वेश्या, अनाथ, कन्या, विधवा, अथवा वाग्दत्ता (सगाई वाली) से (काम वासना से प्रेरित होकर) आलाप—सलाप, हास्य—विनोद, कुचेष्टाए आदि करना

ही अतिचार है।

३ **अनंगक्रीडा.**—अन् = नही है, अग = काम सेवन के साधन—शरीरावय जो, उनसे काम सेवन करना या प्राकृतिक अगो को छोडकर अप्राकृतिक अगो से विषय सेवन करना। जैसे कि हस्तकर्म अथवा अन्य उपायो का प्रयोग। उपचार से स्वपत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियो के साथ मैथुन के सिवा चुम्बन, आलिगनादि करना भी अनग क्रीडा है।

४ **पर-विवाह करणः**—अपना एव अपनी सतान अथवा दायित्व के निर्वाह के लिए सम्बन्धी को छोड अन्य के विवाह करने—करवाने मे लीन रहना पर—विवाहाकरण अतिचार है।

५ **काम-भोग तीव्राभिलाष**·—शब्द, रूप आदि पाच इन्द्रिय—विषयो मे आसक्त होना। स्वदार—सतोषी व्रती के लिए पुरुष के वेद जनित वासना को शात करने की छूट है। वाजीकरण आदि औषधियो के बल तथा कामशास्त्रो मे कथित काम—प्रयोग का उपयोग कर वासना को तीव्र कर रति—क्रीडा को निरन्तर चाहना नही।

ये वे उपाय है जिससे व्यक्ति (श्रावक) अपने को सयमित रख सकने मे समर्थ हो जाता है।

(५) **परिग्रह (इच्छा) परिमाण व्रतः**—परिग्रह = मोह बुद्धि से वस्तु का भली प्रकार गहण करना परिग्रह है। अर्थात् वस्तु एव इच्छा और उसका परिमाण करना। क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, स्वर्ण, द्विपद, चतुष्पद, धन, धान्य तथा कुप्य—(कासा पीतल आदि के पात्र एव अन्य घर का सामान) इन नव प्रकार के परिग्रह का परिमाण कर मन की मूर्च्छा तृष्णा को सीमित कर सतोष को जीवन मे जागृत करना ही इस व्रत का मूल अर्थ है। क्योकि परिग्रह ही ससार का सबसे बडा बन्धन है। मर्यादित वस्तु के उपरान्त वस्तुओ का एक

करण तीन योग अथवा एक करण एक योग से त्याग किया जाता है। इस व्रत के पांच अतिचार है–

१. **क्षेत्र वास्तु प्रमाणातिक्रम**–क्षेत्र का अर्थ धान्य उत्पत्ति स्थान–खेत या खुली भूमि, वास्तु = घर, प्रासाद आदि। इनकी जितनी मर्यादा की हुई है उसका अतिक्रमण करना।

२ **हिरण्य**–सुवर्ण प्रमाणातिक्रम–रूपा/चादी, सोने (घडा, अनघडा) के प्रमाण का उल्लघन करना।

३. **द्विपद**–चतुष्पद प्रमाणातिक्रम–दोपाये–स्त्री, दास–दासी, चौपाये–गाय, घोडादि, पशु, तोता–मैना आदि पक्षी का जितना प्रमाण (मर्यादा) किया है उससे अधिक बढा लेना।

४ **धन-धान्यादि प्रमाणातिक्रम**–धन–गणिम धरिम, मेय, परिच्छेद्य रूप चार प्रकार का धन तथा चौबीस प्रकार का धान्य, इनकी मर्यादा का उल्लघन।

उक्त चारो प्रकार की हुई मर्यादा से अधिक खेत (खुली जमीन) भवनादि, चादी–सोना, पशु–पक्षी, दासादि तथा धन–धान्यादिके प्राप्त हो जाने पर उन्हे अपने अधिकार मे दूसरे के पास रखकर ग्रहण कर लेना या दूसरे के नाम से अपने अधिकार मे रखना, प्रयोग मे लेना अतिचार है।

५ **कुप्य प्रमाणातिक्रम**–कुप्य=सोने–चादी के अतिरिक्त अन्य धातु (कासा, पीतल, ताम्बा, लोहा आदि तथा बने हुए पात्र) आसन, शय्या, कम्बल आदि घर के सामान (घर बिखरी) का प्रमाणातिक्रम करना कुप्य प्रमाण का उल्लघन है।

तीन गुणव्रतः–गुण से अभिप्राय यहा उपकारक तथा पुष्ट करने वाला लिया गया है। पाच अणुव्रतो के पालन करने मे जो उपकारक (सहयोगी) हो अथवा उन्हें पुष्ट करते है वे 'गुण' व्रत कहे जाते है। ये तीन है–

(६) **दिशि परिमाणव्रतः**—पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, अधो, उर्ध्व, इन छह दिशाओ मे गमन की मर्यादा तथा उपरान्त आश्रव सेवन का त्याग करना दिशी परिमाण है। इसके पाच अतिचार है—

१ **ऊर्ध्व दिशा परिमाणातिक्रमः**—ऊची दिशा के परिमाण का उल्लघन करना।

२ **अधोदिशा परिमाणातिक्रमः**—अध यानी नीची दिशा के परिमाण का उल्लघन।

३ **तिर्यक् दिशा परिमाणातिक्रम**:—तिरछी दिशा के परिमाण का अतिक्रम।

४ **क्षेत्र वृद्धि**—एक दिशा के परिमाण को घटाकर दूसरी दिशा के परिमाण को बढा लेना क्षेत्र वृद्धि परिमाण उल्लघन का दोष है। जैसे पूर्व दिशा के परिमाण को घटाकर पश्चिम आदि की मर्यादित दिशा क्षेत्र को बढा लेना। यह कपट पूर्ण अतिचार हैं।

५ **स्मृति भ्रंश**—दिशा के गृहीत परिमाण का स्मरण न रहना कि अमुक दिशा क्षेत्र का कितना परिमाण किया है इस भ्रान्ति मे जीव उसका अतिक्रमण कर जाता है।

(७) **उपभोग-परिभोग परिमाण व्रतः**—उपभोग/वे पदार्थ जो बार—बार जीवन मे काम आते है जैसे, वस्त्र, भवन, शय्यादि। परिभोग/जो एक बार काम आये जैसे, भोजनादि खाने योग्य पदार्थ। ऐसे उपभोग्य, परिभोग्य पदार्थो (वस्तुओ) का परिमाण करना अर्थात् छब्बीस बोलो की मर्यादा करना और शेष पदार्थो के भोग—उपभोग का त्याग करना उपभोग—परिभोग परिमाण व्रत है।

छब्बीस बोल

(१) **उल्लणिया विधि**—शरीर पोछने का वस्त्र—तोलिया, अगोछा आदि का परिमाण।

(२) **दातुन विधि**—दात—धोवन के लिए दतौन (बबूल आदि) की मर्यादा। वर्तमान युग मे मजन, पेस्ट—ब्रश आदि। ये भी वनस्पत्यक/ होने चाहिए।

(३) **फल विधि**—आम्र, कदली, संतरा आदि फलो का परिमाण। आजकल "टिनफ्रूट" आदि। बशर्ते वे भक्ष्य हो तो।

(४) **अभ्यंगन विधि**—तैल—मर्दन के लिए अमुक तैल प्रयोग मे लूंगा ऐसी मर्यादा।

(५) **उबटन विधि**—आटे, मैदे आदि की पीठी जिससे शरीर साफ किया जाता है उसके प्रकार का परिमाण। आज के युग का शैम्पू, बाथ पाउडर आदि। साबुन के प्रकार तथा स्पज, लायलोन के ब्रश।

(६) **मंजन विधि**—स्नान के लिए जल का परिमाण या उसके लिये पानी की जाति का परिमाण।

(७) **वस्त्र विधि**—सूती, ऊनी, रेशमी अमुक वस्त्र अमुक संख्या तक प्रयोग मे लाऊंगा, का परिमाण। वर्तमान मे पोलीस्टर आदि के।

(८) **विलेपन विधि**—चन्दन आदि सुगधित द्रव्यो का शरीर पर लेप का परिमाण। आज की क्रीम, पाउडर, सेन्ट आदि आधुनिक गध द्रव्य।

(९) **पुष्प विधि**—अमुक जाति के गुलाब आदि फूलो का परिमाण।

(१०) **आभरण विधि**—हार, अगूठी आदि अमुक आभूषण ही पहनूगा, ऐसा परिमाण।

(११) **धूप विधि**—भवन शुद्धि के लिए अगरबत्ती, धूप, लोबान आदि मे अमुक के प्रयोग का परिमाण। स्प्रे की जाने वाली

तरल औषधिया तथा मच्छर के प्रकोप से बचने के लिए—धूप की भाति धूआ करने वाली औषधिया।

(१२) **पेय विधि**—पीने योग्य पदार्थ, शर्बत, शिकजी, स्क्वैश, लैमन, सोडा आदि मे से अमुक पेय का ही प्रयोग करूगा ऐसा परिमाण। आधुनिक जितने भी वनस्पत्यक पेयद्रव्य।

(१३) **भक्षण विधि**—जो खाने योग्य पदार्थ हैं उनका परिमाण कि अमुक—अमुक प्रयोग मे लाऊगा।

(१४) **ओदन विधि**—चावलो के अनेक प्रकारो मे से एक दो आदि प्रकार के उपभोग का परिमाण।

(१५) **सूप विधि**—दाल, जो अनेक जाति की हैं, मे से खाने के लिए परिमाण। जैसे मूग, उडद, अरहर, तूअर आदि।

(१६) **विगय विधि**—दूध, घी, तैल, गुड तथा दही, ये विगइय पदार्थ कहलाते है, इनमे से प्रतिदिन के लिए या जीवन के लिए सख्या का तथा भोग के परिमाण की मर्यादा करना।

(१७) **शाक विधि**—पालक, बथुआ आदि अनेक जातियो मे से परिमाण करना। आधुनिक जाति मिश्रण से उत्पन्न की गई वनस्पति शाक आदि की भी मर्यादा, सख्या की दृष्टि से।

(१८) **माधुर विधि**—मिष्ठ—मीठे पदार्थो (मिठाई) मे से अमुक—अमुक मिठाई—भक्षण का परिमाण। अथवा आवला, सेवादि का मुरब्बा।

(१९) **जेमण विधि**—दही बडे आदि भोजन का परिमाण।

(२०) **पाणी विधि**—पानी की अनेक जातिया है—पालर—वर्षा का, बाकल—कुए का आदि के प्रयोग का परिमाण।

(२१) **मुखवास विधि**—पान, सुपारी, लवग आदि मुख को सुवासित स्वादिष्ट करने वाले पदार्थो का परिमाण।

(२२) **शयन विधि**—शैय्या—पलग, चारपाई, पट्ट आदि की सख्या का परिमाण।

(२३) **उपानत् विधि**—पगरखी, चप्पल, बूंट, स्लीपर आदि की किस्मो तथा चमडा, कपडा, रबर, आदि के प्रकार और सख्या का परिमाण।

(२४) **वाहन विधि**—सवारी, यात्रा के लिए जीव—सवारी, निर्जीव का परिमाण।

(२५) **सचित्त विधि**—सजीव पदार्थो के उपभोग (नारी, पुरुष, दास—दासी, पशु आदि) का परिमाण।

(२६) **द्रव्य विधि**—उपर्युक्त समस्त वस्तुओ की सख्या से परिमाण। उक्त द्रव्यो (२५) मे से ४—५—७—११—१५ द्रव्यो का ही सेवन करना।

इस गुण व्रत के पांच अतिचार है—

१ **सचित्त आहार**—सचित्त—सजीव, वस्तु—पृथ्वी, जल, वनस्पति, फल, कन्द—मूलादि का (परिमाणोपरान्त) जितना परिमाण उपभोग किया है उनसे अधिक सचित्त का आहार करना अतिचार है। यह अतिचार सचित्त त्यागी श्रावक के लिए भी है।

२. **सचित्त प्रतिबद्धाहार**—सचित्त वस्तु से सम्बद्ध—लगी हुई अचित वस्तु का जैसे गुठली सहित खजूर, वृक्ष से लगा गोद या पक्व फल आदि (खाना) आहार करना (सर्वथा सचित्त त्यागी व्यक्ति के लिए सचित्त से छूती हुई वस्तु का तथा सचित्त परिमाण वाले के लिए मर्यादा से अतिरिक्त सचित्त वस्तु से लगी वस्तु का आहार अतिचार है।)

३. **अपक्व औषधि भक्षण**—अपक्व—बिना पकी हुई शाली आदि औषधि का खाना।

४ **दुष्पक्व औषधि भक्षण**—दुष्पक्व—अग्नि मे पूरी तरह पकी हुई अथवा अधपकी हुई को पकी समझ कर खाना, अधिक पक कर गलने लगी है ऐसी दुष्पक्व औषधि भक्षण अतिचार है।

५ **तुच्छौषधि भक्षण**—तुच्छ—जो सारहीन है, जिनमे खाने योग्य वस्तु कम/अल्प मात्रा मे है। ऐसी वनस्पति—सीताफल आदि का खाना।

उक्त अतिचार भोजन सम्बन्धी है तथा उन भोग्य पदार्थो के उपार्जन के लिए जो व्यापार है और उनमे से वे व्यापार जो बहु क्रूर पापक हैं हिसक हैं, श्रावक उसका भी त्याग करता है। ये पन्द्रह कर्मादान है जो श्रावक के लिए त्याज्य है।

(८) **अनर्थदण्ड विरमणः**—अन् + अर्थ = नही है अर्थ + प्रयोजन जिसमे, वह दण्ड = हिसा पीडा है, उससे विरमण =निवृत्त होना। अर्थ—प्रयोजन के लिए गृहस्थ श्रावक को हिसा करनी पडती है किन्तु कई एक व्यर्थ ही बैठे हुए मन, वचन एव काय योग से हिसा करते हैं जैसे कि **अपध्यान चरित**—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान/मन मे चिन्ता, दु सकल्प करते रहना, प्रमाद चरित—प्रमाद—(मद—विषय—कषाय —निद्रा—विकथारूप) अर्थात् अनुष्ठान के प्रति उपेक्षाभाव से प्रवृत्ति करना, **हिंस्र प्रदान**—हिसाकारी शस्त्रो का बिना प्रयोजन ही देना सग्रह करना। **पापकर्मोपदेश**—अन्य को पाप करने का उपदेश देना। उक्त चार प्रकार है अनर्थदण्ड के जिसका श्रावक यथाविधि त्याग करता है। ऐसा करता हुआ श्रावक निष्प्रयोजन हिसा असत्य, चौर्य, अब्रह्म, परिग्रह आदि पाप कार्य से बचता है।

इस व्रत के पाच अतिचार हैं—जो श्रावक के लिए केवल जानने योग्य है आचरण के योग्य नहीं हैं—

१ **कन्दर्प**—कामोत्पादक वचन का प्रयोग करना, अश्लील मजाक। (विनोद—हास्य)

२. **कौत्कुच्य**—कुचेष्टाए, भौहे, नेत्र, ओठ, मुख, हाथ—पैर आदि शारीरिक अंगो को विकृत (टेढे—मेढे) बनाकर दूसरो को हसाने वाली कुचेष्टाएं करना।

३ **मौखर्य्य**—वाचाल—बकवादी बनकर अनियंत्रित वचन बोलते रहना। मुखर/वाचाल होना।

४ **संयुक्ताधिकरण**—संयुक्त=एकत्रित, मिलाकर, अधिकरण+शस्त्र —हिसा के साधनो को मिलाकर रखना।

५. **उपभोग-परिभोगातिरिक्त**—उपभोग्य—परिभोग्य (वस्तु, भोजन श्रृगार प्रसाधन आदि) को अपने एव पारिवारिकजनो के उपभोग मे आने से अधिक सग्रह करके रखना उपभोग—परिभोगातिरेक अतिचार है।

चार शिक्षा व्रत—शिक्षा—अभ्यास योग्य व्रत, विरति क्रिया, अथवा वे व्रत जो बार—बार सेवन करने योग्य है शिक्षाव्रत कहलाते है। ये चार है—

(६) **सामायिक व्रत**--पूर्ण सावद्य (पापक) योगो/मन, वचन, काया की हरकत, व्यापार का त्याग, आर्त्त एवं रौद्रध्यान—मन की चिन्तना को दूर कर उसे धर्म एवं शुक्ल ध्यान मे लगाना, मन को राग—द्वेष से दूर रख समभाव में स्थित रखने के लिए अभ्यास करना सामायिक है। इसका आचरण दो करण—करना, करवाना, तीन योग से होता है। सामायिक का कालमान एक मुहूर्त—(दो घड़ी) है। इसके बत्तीस दोष है। इसके पांच अतिचार है—

१ **मनोदुष्प्रणिधान**—मन का दुष्ट प्रयोग—बुरा व्यापार मे वर्तना।

२ **वाग्दुष्प्रणिधान**—वचन का दुष्ट प्रयोग—सावद्य। असभ्य, कठोर वचन बोलना।

३ **काय दुष्प्रणिधान**—काया का अनुपयोग से बिना पूजी देखी भूमि पर बैठनादि।

४ **सामायिक स्मृत्यकरण**—सामायिक की स्मृति—याद न रहना (प्रतिज्ञा कब ग्रहण की है।)

५ **अनवस्थित सामायिक करण**—सामायिक का विधिपूर्वक आचरण न करना।

(सामायिक मे मन से घर के कामो का अच्छा—बुरा चिन्तन, वचन से बुरा वचन बोलना, काया से विवेक पूर्ण उठना—बैठना नही तथा सामायिक के काल की याद न रहना, और सामायिक को अविधि से प्रमादादि से ग्रहण करना तथा अस्थिरता, आतुरता से शीघ्र ही व अविधि से पालना एव पूर्ण करना)

(१०) **देशावकाशिक व्रत**—दिशाओ की गृहीत मर्यादा/परिमाण मे से तथा अन्य व्रतो मे भी प्रतिदिन सकोच (गृहीत मर्यादा को कम) करना देशावकाशिक शिक्षा व्रत है अथवा सवर अनुष्ठान अहर्निश काल के लिए ग्रहण करना। इस शिक्षा व्रत के पाच अतिचार हैं—

१ **आनयन प्रयोग**—मर्यादा किए हुए दिशा क्षेत्र से बाहर न जा सकने के कारण दूसरो से 'अमुक वस्तु ले आना' ऐसा सदेश देकर वस्तु मंगाना।

२ **प्रेष्य प्रयोग**—प्रेष्य=भेज कर, प्रयोग=मंगाना। मर्यादित क्षेत्र के बाहर से स्वय न जाकर दूसरे व्यक्ति को भेजकर वस्तु मगवाना। स्वय जाना भी अतिक्रम आदि है।

(३) **शब्दानुपात**—शब्द द्वारा (छींक, खासी आदि) ज्ञान कराना।

(४) **रूपानुपात**—मर्यादित दिशा क्षेत्र के बाहर प्रयोजन उपस्थित होने पर दूसरो को अपना रूप या किसी वस्तु को

दिखाकर ज्ञान कराना।

५ **बहिः पुद्गल प्रक्षेप**–उक्त क्षेत्र में ककर, ढेला आदि फेककर ज्ञान कराना।

उक्त पाच अतिचार मर्यादा क्षेत्र के बाहरवर्ती वस्तुओ के भोग तथा विशिष्ट प्रयोजन के लिए श्रावक करता है किन्तु ये अतिचार हैं। उसे उसी नियम व्रत मे ही सतुष्ट रहना चाहिए।

(११) **पौषधोपवासः**–एक दिन–रात यानी आठ प्रहर के लिए चार आहार, मणि, सुवर्ण तथा आभूषण, पुष्पमाला, सुगंधित चूर्ण आदि उपभोग योग्य वस्तुओ और मन, वचन, कायादि के सावद्य (पापक) व्यापारो का परित्याग कर एकान्त धर्मस्थान में धर्म ध्यान मे लीन रहना, आत्मा को पोषण करना पौषध–उपवास शिक्षा व्रत है।

इसके पांच अतिचार है–

१ **शय्या-संस्तार** को नही देखना या अन्यमनस्क (असावधानी) से देखना। अप्रत्युपेक्षित–दुष्प्रत्युपेक्षित शैय्या सस्तारक अतिचार है।

२. **शय्या-संस्तार** को न पूजना (प्रमार्जन न करना) यदि किया तो अनुपयोग से करना अप्रमार्जित–दुष्प्रमाजित शय्या संस्तारक अतिचार है।

३. **उच्चार-प्रस्रवण** भूमि को भली भांति न देखना या असावधानी से देखना।

४. **उच्चार-प्रस्रवण** (मल–मूत्र) भूमि का सम्यग् प्रमार्जन न करना।

५ **पौषधोपवास** का सम्यग् पालन न करना अर्थात् व्रत–रीत्यानुसार उसका पालन न करना तथा त्याज्य आहार, शरीर शुश्रूषा, अब्रह्म आदि की अभिलाषा करना, पौषधोपवास का सम्यक् अपालन अतिचार है।

(१२) **अतिथि संविभाग व्रत**—अ = नहीं है, तिथि + दिन, समय निश्चित जिसका ऐसे अतिथि का सविभाग + अपने अधिकृत पदार्थ मे से भाग देना। अर्थात् साधु, प्रतिमाधारी श्रावक (ब्राह्मण) आदि को इनकी वृत्यानुसार निर्दोष अशनादि चौदह प्रकार का दान, निष्काम वृत्ति आत्म कल्याण की भावना से देना तथा सयोग मिलने पर ऐसी भावना रखना अतिथि सविभाग व्रत है। अनुकम्पा दृष्टि से साधु, श्रावक के अतिरिक्त देना भी इसी के अन्तर्गत है। इस व्रत के पाच अतिचार हैं—

(१) **सचित्त निक्षेपः**— सचित—सजीव वस्तु पर, निक्षेप, अचित वस्तु को सचित पर कपट पूर्ण मनोवृत्ति से रखना। साधु को न देने की भावना से।

(२) **सचित्त पिधानः**— अचित्त वस्तु (देय वस्तु) पर सचित्त—फल आदि से साधु को न देने की मनोवृत्ति से ढक देना।

(३) **कालातिक्रमः**—भिक्षा काल—समय का अतिक्रम करके भिक्षार्थ विनति करना।

(४) **परव्यप्रदेशः**—दूसरे का कहना, देयमान आहारादि न देने की इच्छा से अपना होने पर भी दूसरे का बता देना।

(५) **मात्सर्यः**—ईर्ष्या भाव से दान देना। 'अमुक से मै क्या हीन हू जो नहीं दे सकता" भावना से प्रेरित होकर देना।

(उपासक दशाग अ १)

कर्मादान १५

"**कर्मादान**" जिन—उपासक के लिए त्याज्य कर्म है। इसमे हिसा, लालच तथा स्वार्थ के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। यह हिसा का, पाप का, स्वल्प रूप ही नहीं महत्तम रूप है। अतएव यह पाप कर्म भी कहे जाते है।

"कर्मादान" दो शब्दो के मेल से बना है—कर्म + आदान। मूल मे यह यौगिक शब्द है पर आगे योगरूढ हो गया है। कर्म=कर्म का, आदान + ग्रहण—बन्धन करना, कर्मादान हैं यानी जिन कर्म—कार्यो द्वारा अधिक कर्म का बन्ध हो, अथवा बहु सावद्य कर्म—अधिक हिसा वाले उद्योगों (धन्धो) से आजीविका निर्वाह करना वह कर्मादान है।

श्रावक के बारह व्रतो में सातवां उपभोग—परिभोग परिमाण व्रत है, यह दो प्रकार का है—भोजन सम्बन्धी, कर्म (उद्योग) सम्बन्धी। भोजन योग्य पदार्थ की मर्यादा तथा कर्म से १५ कर्मादान केवल जानने योग्य है आचरण योग्य नही।

ये कर्मादान पन्द्रह हैं—

१ **अंगार कर्म**—वृक्ष काटकर, उन्हे जला कर कोयला बनाकर व्यापार करना। इस कर्म मे महा हिसा छुपी है। वृक्षो के जलाने मे एकेन्द्रिय एवं उपचार से पचेन्द्रिय तक जीवो की (अग्नि प्रयोग से) अंगार के कारण हिसा होती है।

२ **वन कर्म**—वन—शीशम, दयार आदि के जगल खरीद कर, उन वृक्षों को कटवाकर बेचना वन कर्म है।

३. **शाकट कर्म**—गाडी, रथ, बग्घी आदि वाहन बनाना और बेचना। आज के युग मे स्कूटर, ऑटोरिक्शा, कार आदि।

४. **भाटक कर्म**—ऊंट, घोडा, बैल आदि तथा इनकी गाडिया किराये पर देकर धन कमाना, भाड़ा कर्म है। यह पशुओ को धनार्जन के लिए पीडा देना है।

५ **स्फोटन कर्म**—भूमि फोडना (खान—खनना) अर्थात् खान खोदकर खनिज पदार्थ—पत्थर, सोना, मिट्टी, अन्य धातु निकलवाकर आजीविका करना।

६ **दन्त वाणिज्य**—हाथी दांत, शंख आदि का व्यापार यानी दात आदि निकलवाने के लिए धन का देना। इसमे जीवित

प्राणियो की हिसा, पीडा का रूप है।

७ **लाक्षावाणिज्य**–लाख–चपडी (वृक्ष का रस) का व्यापार, जिसमे (वस्तु) के तैयार होने मे त्रस जीवो की हिसा होती हो।

८ **रस वाणिज्य**–रसो–मदिरा, आसव आदि तथा उपचार से घी, तेल, आदि स्निग्ध चिकने पदार्थो का व्यापार जिसमे पडकर मक्खी, चूहे, आदि त्रस जीवो की हिंसा का भय वह रस वाणिज्य है।

९ **केश वाणिज्य**–केशो का यानी केशवालो का, दास, दासी, पशु आदि का लेना बेचना। सूअर जिसके बालो से ब्रुश बनते है, चमरी गाय के बालो का व्यापार जिससे चवर बनते है इसी के अन्तर्गत है।

१० **विष वाणिज्य**–शंखिया, धतूरा, कुचला आदि विषैले पदार्थो का व्यापार अथवा जीव नाशक पदार्थ जिन्हे खाने या सूंघने से मृत्यु हो जाती हो उनका व्यापार करना विष वाणिज्य है। जितने साल्ट, केमीकल्स हैं, इसी के अन्तर्गत हैं।

११ **यन्त्र पीड़न कर्म**–कोल्हू आदि ईख, तिल आदि पीडने वाले यन्त्रो का लगाना।

१२ **निर्लाच्छन कर्म**-बैल आदि को नपुंसक बनाने का उद्योग करना।

१३ **दावाग्नि दापन**–जंगल आदि मे आग लगाना।

१४ **सरो-ह्रद-तडाग शोषण**–तालाब, ह्रद, कुण्ड आदि को सुखाने का कर्म (उद्योग) ठेका लेना आदि। इसमे (जलचर) त्रस प्राणियो की महत्ती हिसा है।

१५ **असती जन पोषणता**–असती जन का अर्थ है सतित्व रहित अथवा धर्म–सदाचरण रहित, अर्थात् दुच्चरित्र स्त्रियो, वैश्या, कुल्टा, आदि तथा उपलक्षण से शिकारी, कसाई आदि का अपनी

आजीविका के लिए धनादि देकर पोषण करना।

ये है वे उद्योग (धन्धे) जो श्रावक के लिए वर्जनीय है। क्यो ? इसलिए कि इनमे त्रस–स्थावर प्राणियो की महाहिसा होती है, अपने क्षणिक सुख, स्वार्थ तथा जीवन के साधन के लिए प्राणी के प्राणो का मर्दन उचित नही कहा जाता। समस्त प्राणी जगत सुखी, समृद्ध एवं जीवित रहना चाहता है फिर भी व्यक्ति का काम बिना इनके नहीं चलता तथापि मनीषियो ने मूक प्राणियो की अर्न्तध्वनि को सुनते है, हिसा कम से कम हो, मर्यादा, विवेक, सावध ानी के लिए आग्रह किया है।

चौदह नियम

"नियम" शब्द भारतीय सस्कृति का सबसे मधुर शब्द है। नियम जीवन को नियमित, पदार्थ रुचि को सीमित करता है। जीवन के लिए कुछ नियम स्वाभाविक ही होते है तो कुछ विशिष्ट अवस्था को लेकर होते हैं। जिस प्रकार भोजन का नियमित व परिमित मात्रा मे करना स्वाभाविक नियम है किन्तु कौनसा भोजन, शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त है और कितना ? यह मन की तृष्णा को सीमित करने के लिए निश्चय करना विशेष नियम है।

एक शिष्य ने गुरुदेव से प्रश्न किया–"**किं सारो ?**"

गुरुदेव ने उत्तर मे कहा–"**सारं तव-नियम-संजम-सीलं।**"

अर्थात् जीवन का सार तप, नियम, सयम तथा शील ही है। ये चारो तत्व आत्मा को, मन को मर्यादित, पदार्थ मूर्छा से दूर तथा पवित्र करते है। जीवन का यही सार है कि तप से इच्छाओ का निरोध, नियम ग्रहण से मर्यादा, सयम से पाच इन्द्रियॉ एव मनोनिग्रह या विवेक पूर्ण प्रवृत्ति और शील से कायिक आचरण को प्रशस्त किया जाय।

नियम का अर्थ है नियमित रूप से आचरण। ये भी दो प्रकार का है—अप्रशस्त (बुरे) का त्याग अथवा प्रशस्त के आचरण की नियमितता।

ये नियम चौदह है –

(१) **सचित्तः**—सजीव पदार्थ/जल, फल—फूल, बीज, धान्य आदि के उपयोग का सर्वथा त्याग अथवा परिमाण ग्रहण करना कि आज अमुक—अमुक पदार्थ अमुक मात्रा तक उपयोग मे लाऊगा सचित्तनियम है।

(२) **द्रव्यः**—अग्नि आदि से पक्व भोजन (अचित्त) पदार्थो का ग्रहण का परिमाण करना। इसमे सभी प्रकार के भोग्य योग्य पदार्थ आ जाते है। यहा सख्या निर्धारित करनी पडती है। जैसे—रोटी, एक द्रव्य, दाल दो द्रव्य आदि।

(३) **विकृति (विगय)**:— शरीर, मन मे विकृति—विकार को बढावा देने वाले पदार्थ विगय है। ये दो प्रकार के है– विगय, महाविगय। दूध, घी, तेल, मिठाई, ये विगय है, मधु, नवनीत, मास, मदिरा, ये चार महा विगय है। इनमे मधु और नवनीत तथा पाच विगय के उपभोग का परिमाण करना एव सकारण परिस्थिति मे मधु और नवनीत का सेवन, मास वा मदिरा का सर्वथा त्याग करना विगय नियम है।

(४) **पन्नीः**—पाव की रक्षा के लिए धारण की जाने वाली वस्तु जूती, खडाऊ, बूट आदि। इनकी मर्यादा करना। सख्या (एक—दो आदि) निर्धारिण।

(५) **ताम्बूल**·—जो वस्तु भोजन के बाद मुख—स्वाद एव शुद्धि के लिए खाई जाती है उन सबका समावेश इसमे है। ताम्बूल का अर्थ तो "पान" ही है। यहा औपचारिक अर्थ से लिया गया है सुपारी, चूर्णादि।

(६) **वस्त्रः**—ऊन, सूत, रेशम तथा अन्य प्रकार के वस्त्रो के उपभोग का परिमाण करना। "आज अमुक जाति का अमुक सख्या तक वस्त्र ग्रहण करूंगा" आदि। (आभूषण मर्यादा भी)

(७) **कुसुमः**—फूल आदि सुगधित (उपलक्षण से इत्र आदि) के सेवन की मर्यादा, अमुक जाति के पुष्प या अमुक इत्र का।

(८) **वाहनः**—सवारी, यह दो प्रकार की है—जीव, अजीव। हाथी, घोड', ऊट, आदमी तथा मोटर, रेल, जलयान, वायुयान आदि अन्य शब्दो मे जल व स्थल वाहन, इनका परिमाण करना "आज अमुक प्रयोग मे लाऊगा।"

(६) **शयनः**— चारपाई, पलग, पाट, बिस्तर आदि शयन—सोने की वस्तुओ की मर्यादा।

(१०) **विलेपनः**— शरीर पर मर्दन, लेपन करने वाले पदार्थ, जैसे, चन्दन, केशर, तेल, उबटन, साबुन आदि के प्रयोग—उपयोग की संख्या और मात्रा का परिमाण करना।

(११) **ब्रह्मचर्यः**—गृहीत मर्यादा की मर्यादा करना। मैथुन क्रिया का परिमाण।

(१२) **दिशापरिमाणः**—छह दिशाओ की गृहीत मर्यादा मे से भी प्रतिदिन गमनागमन के लिए "अमुक दिशा मे अमुक किमी तक जाऊगा" परिमाण करना या दिशागमन की मर्यादा करना।

(१३) **स्नान.**—शरीर शुद्धि के लिए स्नान है, श्रृगार के लिए नही, उसका परिमाण यानी एक बार, दो बार आदि तथा। यह स्नान दो प्रकार का है—सर्व स्नान, देश स्नान।

(१४) **भक्त**—भोजन, जल के उपभोग की मात्रा का परिमाण।

उपर्युक्त नियम जीवन को शुभ्र एव उन्नत बनाते है। पदार्थ मर्यादा मे दोनों भाव गर्भित हैं—अनिष्ट का परिहार्य, इष्ट का

स्वीकार्य आध्यात्मिक एव व्यावहारिक भी। नियम ग्रहण के मुख्य दो लाभ हैं–

(१) प्रथम मन आसक्ति तथा सकल्प–विकल्प से परे रहता हुआ परम शाति का अनुभव करता है। बद्धकर्म/बन्धे हुए की निर्जरा, नवीन का निरोध करता है। मन की प्रवृत्ति शुभ होने से शुभ, मनोयोग होता है। सवर/आश्रव परित्याग, प्राणी को अभयदान।

(२) दूसरा–जीवन मे सादगी, पदार्थ का अनिवार्य ही उपयोग तथा धनार्जन के लिए दुष्कृत्यो का परिहार होता है।

अतएव श्रावक के प्रतिदिन चौदह नियम चितारने का विधान किया है। साथ ही इस चौदह नियम धारण पद्धति से अभ्यास बढने पर व्यक्ति बारह व्रत आदि विशेष नियम के पालन मे समर्थ और रुचिशील हो जाता है। शनै शनै प्रवृत्ति सामान्य रूप से उच्च भूमिका मे स्थित करने की निमित्त होती है।

नियम व व्रत मे अन्तर-

नियम सामान्य और परिस्थिति वश होते है तथा उसका पालन एक निश्चित समय तक ही रहता है किन्तु व्रत जीवन पर्यन्त के लिए होता है। अहिसा आदि बारह व्रत है तथा वस्तु आदि का त्याग नियम है।

"नियम परिमित कालो, यावज्जीव यमो प्रियते"

–रत्नक श्रा ८७

"उपव्रतानि नियमः" के अनुसार उप–व्रत नियम है। या उत्तर गुण को नियम कहते है।

ये नियम वृद्ध परम्परा के अनुसार एक दिन–रात परिमाण काल के लिए है क्योकि आगार धर्म जो ठहरा। किन्तु कही–कही इससे कम अथवा अधिक समय पालन का रूप मिलता है–

"एक मुहूर्त, दिवस, रात्रिकाल, पाच दिन, एक पक्ष, अथवा इससे कम–अधिक अपनी इच्छानुसार ग्रहण करे"

नियम का महत्व:-

सबसे बढकर प्रेम है, प्रेम से बढकर नेम।
जिस घर प्रेम न नेम है, उस घर कुशल न क्षेम।।

उक्त चौदह नियम मे "गीत–नृत्य, भूषण" ये वस्त्र के अन्तर्गत ले लिए है, और यहा पृथक्–पृथक् माने है। धारण विधि एव काल वही है।

(धर्म सग्रह, अधिकार २, श्लो ३४ टीका)

तेईसवें बोले साधुजी के पांच महाव्रत।

१ पहले महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से जीव की हिसा करे नही, करावे नही, करते हुए को भला जाने नही, मन वचन काया से (तीन करण तीन योग से)।

२ दूसरे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से झूठ बोले नही, बोलावे नही, बोलते हुए को भला जाने नही, मन वचन काया से (तीन करण तीन योग से)।

३ तीसरे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से चोरी करे नही, करावे नहीं, करते हुए को भला जाने नहीं, मन वचन काया से (तीन करण तीन योग से)।

४ चौथे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवे नहीं, सेवावे नहीं, सेवते हुए को भला जाने नहीं, मन वचन काया से (तीन करण तीन योग से)।

५ पांचवे महाव्रत मे साधुजी महाराज सर्वथा प्रकार से परिग्रह रखे नहीं, रखावे नही, रखते हुए को भला जाने नहीं, मन वचन काया से (तीन करण तीन योग से)।

महाव्रत किसे कहते है ? सर्व विरति अर्थात् सम्पूर्ण रीति से हिसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह का त्याग करने को महाव्रत कहते है।

महाव्रत–सर्वविरति अर्थात् सम्पूर्ण रीति से हिसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह का त्याग करना महाव्रत है। सर्वथा प्रकार से (तीन करण–तीन योगो से) धारण करने वाला व्यक्ति साधु–श्रमण–मुनि कहलाता है। महाव्रत प्रतिज्ञा श्रमण धर्म/सर्व विरति धर्म कहलात्ता है इसका धारण करने वाला 'सर्व विरत' कहा जाता है।

१ **प्राणातिपात विरमण महाव्रत**–सर्वथा प्रकार से स्थूल–सूक्ष्म, स्थावर। त्रस प्राणियो की हिसा का त्याग, अर्थात् हिसा करना नही, दूसरे से करवाना नही, किसी करते हुए को अनुमति/समर्थन नही देना, मन, वचन और काया से।

२ **मृषावाद विरमण महाव्रत**–सर्वथा प्रकार के असत्य बोलना नहीं, बुलवाना नहीं, बोलते हुए को अच्छा नहीं जानना/अनुमति नही देना मन से, वचन से, काया से।

३ **अदत्तादान विरमण महाव्रत**–सर्वथा प्रकार से अदत्तादान सेवन करना नही, करवाना नही, करते हुए को अच्छा नहीं जानना, मन से, वचन से, काया से।

४ **मैथुन विरमण महाव्रत**–सर्वथा प्रकार से मैथुन सेवन करना नहीं, करवाना नहीं, करते हुए को अच्छा नही समझना, मन से, वचन से, काया से।

५ **परिग्रह विरमण महाव्रत**–सर्वथा प्रकार से स्थूल, सूक्ष्म, सचित्त–अचित्त, अल्प–बहुत्व परिग्रह सग्रह करने का त्याग, तीन करण, तीन योग से, मनसा–वयसा–कायसा– करना–करवाना–करते हुए को अच्छा नही समझना।

चौबीसवें बोले भांगा ४६ की जानकारी

भग किसको कहते हैं ? विभाग रूप रचना को भंग कहते है। इनका अर्थ विकल्प या प्रकार से है। ये प्रत्याख्यान के सन्दर्भ मे बताये गये है।

११ आक एक ग्यारह को भागा उपजे नव–एक करण एक योग से कहना–१ करू नही मनसा, २ करूं नहीं वयसा, ३ करू नहीं कायसा, ४ कराऊ नही मनसा, ५ कराऊं नहीं वयसा, ६ कराऊ नहीं कायसा, ७ अनुमोदू नहीं मनसा, ८ अनुमोदू नही वयसा, ६ अनुमोदूं नहीं कायसा।

१२ आक एक बारह को भागा उपजे नव–एक करण दो योग से कहना–१ करूं नही मनसा वयसा, २ करू नहीं मनसा कायसा, ३ करू नही वयसा कायसा, ४ कराऊ नहीं मनसा वयसा, ५ कराऊं नहीं मनसा कायसा, ६ कराऊं नहीं वयसा कायसा, ७ अनुमोदूं नही मनसा वयसा, ८ अनुमोदू नहीं मनसा कायसा, ६ अनुमोदू नहीं वयसा कायसा।

१३ आक एक तेरह को भांगा उपजे तीन–एक करण तीन योग से कहना–१ करूं नही मनसा वयसा कायसा,२ कराऊ नहीं मनसा वयसा कायसा, ३ अनुमोदू नही मनसा वयसा कायसा।

२१ आंक एक एक्कीस को भागा उपजे नव–दो करण एक योग से कहना–१ करूं नही कराऊ नहीं मनसा, २ करूँ नहीं कराऊ नही वयसा, ३ करू नही कराऊ नहीं कायसा, ४ करू नही अनुमोदू नहीं मनसा, ५ करूं नही अनुमोदू नही वयसा ६ करू नहीं अनुमोदूं नहीं कायसा, ७ कराऊं नहीं अनुमोदूं नही मनसा, ८ कराऊ नहीं अनुमोदूं नहीं वयसा, ६ कराऊं नहीं अनुमोदू नही कायसा।

२२ आक एक बाईस को भागा उपजे नव—दो करण दो योग से कहना—१ करू नहीं कराऊ नहीं मनसा वयसा, २ करूँ नहीं कराऊं नहीं मनसा कायसा, ३ करू नहीं कराऊ नही वयसा कायसा, ४ करू नहीं अनुमोदू नहीं मनसा वयसा, ५ करू नही अनुमोदू नहीं मनसा कायसा, ६ करू नही अनुमोदू नहीं वयसा कायसा, ७ कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं मनसा वयसा, ८ कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं मनसा कायसा, ९ कराऊ नही अनुमोदू नही वयसा कायसा।

२३ आक एक तेईस को भागा उपजे तीन—दो करण तीन योग से कहना—१ करू नहीं कराऊ नहीं मनसा वयसा कायसा, २ करू नही अनुमोदू नहीं मनसा वयसा कायसा, ३ कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं मनसा वयसा कायसा,

३१ आक एक इकतीस को भागा उपजे तीन—तीनकरण एक योग से कहना— १ करू नहीं कराऊ नही अनुमोदू नहीं मनसा, २ करू नहीं कराऊं नही अनुमोदू नही वयसा, ३ करू नहीं कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं कायसा।

३२ आक एक बत्तीस को भागा उपजे तीन—तीन करण दो योग से कहना—१ करू नहीं कराऊ नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वयसा, २ करू नही कराऊ नहीं अनुमोदू नही मनसा कायसा, ३ करू नहीं कराऊ नही अनुमोदू नही वयसा कायसा।

३३ आक एक तेतीस को भागा उपजे एक—तीन करण तीन योग से कहना—१ करू नहीं कराऊ नही अनुमोदू नहीं मनसा वयसा कायसा।

आंक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३
भांगा	६	६	३	६	६	३	३	३	१
करण	१	१	१	२	२	२	३	३	३
योग	१	२	३	१	२	३	१	२	३
सर्व भागा	६	१८	२१	३०	३६	४२	४५	४८	४६
८१ सेरी मे से रूकी	६	१८	२७	१८	३६	५४	२७	५४	८१

पच्चीसवें बोले चारित्र पांच–१ सामायिक चारित्र, २ छेदोपस्थापनीय चारित्र, ३ परिहारविशुद्ध चारित्र, ४ सूक्ष्म सपराय चारित्र, ५ यथाख्यात चारित्र।

चारित्र किसको कहते है ? चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय उपशम या क्षयोपशम से उत्पन्न हुए विरति परिणाम को तथा सयम अनुष्ठान को तथा जो आठ कर्मो को चरे (नाश करे) उसको चारित्र कहते है।

आत्मा को निज स्वरूप मे स्थित रखने का प्रयत्न चारित्र है। चारित्र, सयम और सवर ये सब एकार्थक शब्द हैं। अशुभ से निवृत्ति और शुभ मे प्रवृत्ति इसका मुख्य लक्षण है।

१ **सामायिक चारित्र**–सावद्य/पापयुक्त व्यापार का सर्वरूप से त्याग करना और निरवद्य व्यापार का सेवन करना। समभाव रूप राग–द्वेष रहित आत्मा के अपूर्व परिणाम सामायिक चारित्र है। सामायिक चारित्र दो प्रकार का है–इत्वरिक काल का तथा यावत्कथित/जीवन भर का। प्रथम एव अन्तिम तीर्थकर के काल मे ये दोनो इत्वरिककाल का सामायिक चारित्र होता है। मध्य के २२ तीर्थकरो के काल मे यावत्कथित सामायिक चारित्र होता है। इसी प्रकार महाविदेह क्षेत्र मे भी है।

२ **छेदोपस्थापनीय चारित्र**–पूर्व पर्याय का। दीक्षा का छेद करके। (कम करके) पुन महाव्रतारोपण कराया जाता है उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते है। यह चारित्र भरत–ऐरावत क्षेत्र मे प्रथम और चरम तीर्थकर के काल मे ही होता है। यह भी सातिचार–निरतिचार भेद से दो प्रकार का है। दोष शुद्धि के लिए छेद आदि को सातिचार और (बडी दीक्षा) इत्वरिक काल सामायिक चारित्र वाले को बडी दीक्षा देना निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र है।

३ **परिहार विशुद्धि चारित्र**–जिस चारित्र मे परिहार विशेष तप से कर्म निर्जरा होती है वह चारित्र परिहार विशुद्धि है।

४ **सूक्ष्म सम्पराय चारित्र**–सम्पराय का अर्थ है कषाय, जिस चारित्र मे कषाय का सूक्ष्म अश अर्थात् सज्जवलन का अश रहता है वह सूक्ष्म सम्पराय चारित्र है।

५ **यथाख्यात चारित्र**–सम्पूर्ण चारित्र। जिस चारित्र मे कषाय का उदय न हो, ऐसा निरतिचार चारित्र यथाख्यात है। यह भी छद्मस्थ और केवली के भेद से दो प्रकार का है। ११वे, १२वे गुणस्थान वाले का छद्मस्थ यथाख्यात चारित्र है। १३वे, १४वे गुणस्थान वाले का केवली यथाख्यात चारित्र है।

जवाहराचार्य चिन्तन बिन्दु

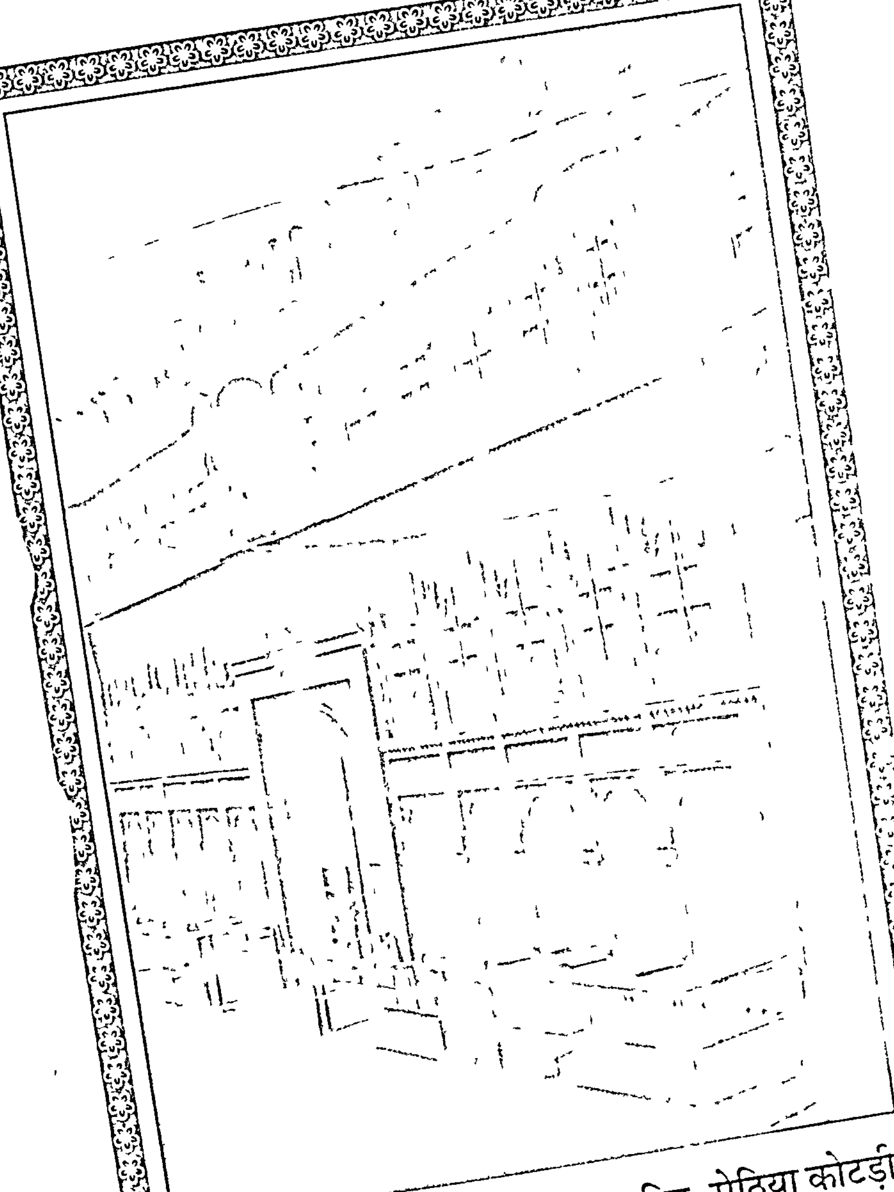
- परतंत्रता पाप है। परतन्त्र व्यक्ति ठीक तरह धर्म की आराधना नही कर सकता।
- अन्त्यजो के प्रति दुर्व्यवहार करके आप धर्म का उल्लघन करते है, देश और जाति को दुर्बल बनाते है, अपनी शक्ति को क्षीण करते है और अपनी आत्मा को गिराते है।
- दम्पत्ति का सम्बन्ध एक–दूसरे को सहायता देकर आत्म कल्याण की साधना के समर्थ बनाने के लिए है। जहॉ इस उद्देश्य की पूर्ति होती है वही सात्विक दायित्व सम्बन्ध समझा जा सकता है।
- धर्म सत्य है और सत्य सर्वत्र एक है, फिर धर्म अनेक कैसे हो सकते है ? अत धर्म एक है, अनेक नहीं।
- सभी धर्म महान् है किन्तु मानव धर्म सबमे महान् है।
- जहॉ निर्लोभता है, वहॉ निर्भयता है।
- ज्ञानहीन क्रिया अन्धी है और क्रियाहीन ज्ञान पंगु है।
- जो परोपकार करता है वह आत्मोपकार करता है।

नानेश चिन्तन बिन्दु

- आतरिक द्वद को शात करने की कला जिसको आ गई वह बाहर के द्वद को सहज ही शात कर सकता है।
- बाह्य जगत का निर्माण आन्तरिक जगत से होता है। आन्तरिक जगत जितना सुसस्कृत और विशाल होगा उतना ही बाह्य जगत उसके सामने उपस्थित होगा।
- जिस प्रेम से शक्ति सचय होता है वहीं वस्तुत सच्चा प्रेम है जिससे शक्तियो का नाश होता है वह प्रेम नही है।
- अतीत अवस्था का स्मरण, वर्तमान का अनुभव, भविष्य का चित्रण सामने रखकर प्रवृत्ति करने वाला व्यक्ति जीवन मे सफलता का अनुभव करता है।
- विचार ही जीवन का मूल स्रोत है इन्हीं के आधार पर जीवन का निर्माण या सहार बनना या बिगडना होता है।
- साधक को साधना के क्षेत्र मे निरन्तर चलते रहना चाहिए। कभी भी विराम का नहीं सोचना चाहिए। विराम का चिन्तन साधक के पतन का सूचक है।
- विद्यमान क्षण को महत्व देना जीवन को सार्थक बनाना है। प्रत्येक समय मे निर्माणात्मक पवित्र विचारो के साथ भावो की प्रबलता ही उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करती है।

रामेश चिन्तन बिन्दु

- ❖ प्रभु की आज्ञा मे वाचिक ही नहीं, आंतरिक समर्पण बने, अन्तर न भीगा तो समर्पण–समर्पण नहीं रह पायेगा।
- ❖ स्वस्थ वातावरण मे ही उपासना का बीज पनपेगा।
- ❖ श्रद्धा की नीव ठोस है तो चारित्र का महल सुरक्षित रहेगा।
- ❖ ध्यान पद्धति हमसे कषायो की कुर्बानी मागती है।
- ❖ गुरु जलती हुई लौ है उसके स्पर्श मे हम अपनी बाती जलाये।
- ❖ सिद्ध परमात्मा के स्मरण से हमारे भीतर नई जागृति, नई उमग का सचार होता है।
- ❖ पारदर्शी मन मे सिद्ध स्वरूप उजागृत होता है।
- ❖ कोई भी कार्य छोटा नही होता। काम 'गुरु' होता है, व्यक्ति को ट्रेण्ड कर देता है।
- ❖ अध्यात्म मे सौदेबाजी नही चलती, आकाक्षा जुडने पर फल सीमित हो जायेगा।
- ❖ विग्रह का कारण है– महत्त्वाकाक्षा, सहिष्णुता का अभाव, आराम वाणी का अध्ययन गौण होना।



अगरचन्द भैंरोंदान सेठिया द्वारा स्थापित, सेठिया कोटड़ी

जैन स्थानक (स्थापित : 1913 ई)